Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

Prose

एक और अन्तरीप

जुलाई-सितम्बर 2011

CC-0 [redacted] Digital Preservation Foundation Chandi[redacted] IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क्योंकि आज ताकतवर
धरती निचोड़कर दौलत बढ़ाएंगे
और उसे इस तरह बांटेंगे कि हर समय
उनको गरीबी मिलती रहे
ऐसे मानवीयता बची रहे पृथ्वी पर
हर समय एक नई क्रूरता पैदा होती रहे
जैसे एक मौसम बनाकर पकाया हुआ बेफसल फल-फूल।

-रघुवीर सहाय

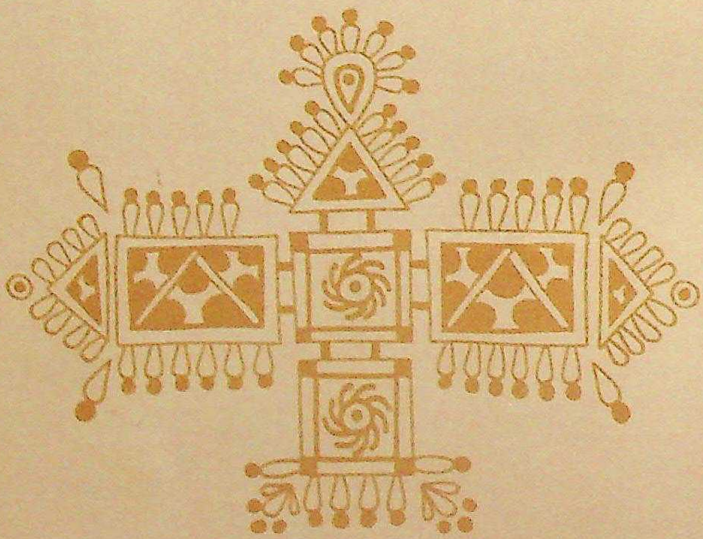

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पंजीयन संख्या : 36/ए.एल./92-टी.सी.

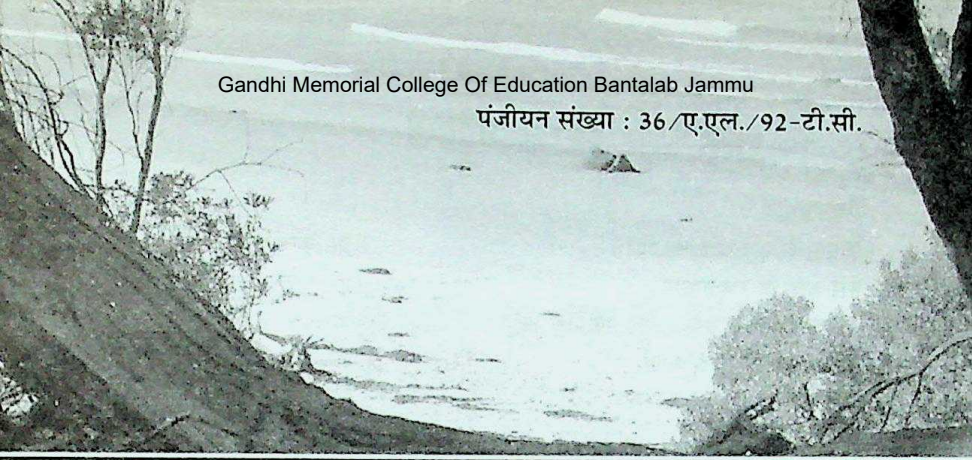

एक और अन्तरीप

मानव मुक्ति को समर्पित

त्रैमासिक/द्विभाषी • वर्ष : 19 • अंक : 01 • जुलाई-सितम्बर 2011

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

प्रधान सम्पादक
प्रेम कृष्ण शर्मा
09414055811

सम्पादक
डॉ. अजय अनुरागी
09468791896
डॉ. रजनीश
09460762293

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu
Acc. No. 4254
Dated 13.12.2023

सम्पादकीय कार्यालय
1, न्यू कॉलोनी, झोटवाड़ा, पंखा, जयपुर-302012

व्यवस्थापकीय कार्यालय
49, विवेक नगर, सिंधी कैम्प
स्टेशन रोड, जयपुर-302006

मूल्य
एक प्रति : 25/-, वार्षिक : 100/-

'एक और अन्तरीप' में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों से सम्पादक तथा प्रकाशक की वैचारिक सहमति आवश्यक नहीं है।
संपादन, संचालन पूर्णतः अवैतनिक एवं अव्यावसायिक है। समस्त विवादों का केन्द्र जयपुर होगा।
CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनुक्रम

सम्पादकीय

विश्राम के बाद यात्रा का आरंभ — प्रेम कृष्ण शर्मा — 3

इस अंक के रचनाकार

जटिल समय का सहज कवि : गोविन्द माथुर — अजय अनुरागी — 6

गोविन्द माथुर की कविताएँ — 21

बातचीत

पूरी ऊर्जा के साथ अपना विरोध करना सीखें... — डॉ. नरेन्द्र इष्टवाल — 25

कवि शताब्दी

जब तख्त गिराये जाएँगे, जब ताज उछाले जाएँगे — रामनिहाल गुंजन — 40

कहानियाँ

मरी घोड़ी — विजय — 49

पड़ौसी — भवानी सिंह — 57

कुछ और नहीं — भगवान अटलानी — 65

दो लघुकथाएँ — पूरण सिंह — 68

कविताएँ

ग्यारह कविताएँ — राजकुमार कुम्भज — 70

अन्त के समय : अन्त के बाद — विजयसिंह नाहटा — 73

कविताएँ — डॉ. सत्यनारायण — 79

समापन — बसंत जेतली — 81

दो नवगीत — सलीम ख़ाँ फ़रीद — 83

व्यंग्य

एक अच्छी आत्मकथा — अखिलेश — 84

विमर्श

नई शताब्दी में हिन्दी आलोचना — डॉ. त्रिभुवन राय — 88

वैश्वीकरण और हिन्दी में ज्ञानोदय की संभावना — विनोद शाही — 94

सैक्स का पाखण्ड — डॉ. रंजना जायसवाल — 99

हिन्दी उपन्यासों में अस्मिता-विमर्श के स्वर — शिप्रा शर्मा — 106

पुस्तक समीक्षा

एक हँसी की उम्र — डॉ. रजनीश भारद्वाज — 112

सामाजिक बदलाव का महाराग — विवेक कुमार मिश्र — 115

आधी दुनिया की थाह लेने की कोशिश — रमेश खत्री — 119

संगोष्ठी

चर्चा में कहानियाँ — प्रस्तुति : असीम कुमार — 121

View & Review

Wither Indian Left? — Suresh Deman — 127

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

विश्राम के बाद यात्रा का आरम्भ

'एक और अन्तरीप' पत्रिका हिन्दी के पाठकों के लिए नया नाम नहीं है, यह अलग बात है कि इस पत्रिका का यह अंक पाठकों के समक्ष लम्बे अंतराल के बाद आया है। बीच में इस पत्रिका को हमने एक संगठन की पत्रिका भी बना दिया था और इसकी कमान संगठन के पदाधिकारियों के हाथों में सम्भला दी थी। किंतु उनकी रुचि इस पत्रिका को निरंतर प्रकाशित करने में शायद नहीं थी। वस्तुत: साहित्यिक पत्रिका निकालना एक क्षमतासाध्य कार्य है तथा इसे रूपाकार देने के लिए समर्पण और एकनिष्ठता की आवश्यकता होती है। हिन्दी के लोगों में इन गुणों का अभाव नहीं है तभी तो नयी-नयी लघु-पत्रिकाएं निकलती रहती हैं।

दरअसल लघु-पत्रिका तो एक अनवरत प्रवाह है जो किसी न किसी नाम से निरंतर प्रवाहमान रहता है। यह जरूरी नहीं कि एक ही पत्रिका निरंतर निकलती रहे और कभी बंद न हो। ऐसा तो उन पत्रिकाओं के लिए भी संभव नहीं है, जिनके पास न साधनों का अभाव है, न मानव संसाधनों का। अगर यही सच होता तो धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, सारिका, नई कहानियां, रविवार, दिनमान, ज्ञानोदय जैसी अनेक पत्रिकाएं बंद ही न होतीं। अज्ञेय को भी 'प्रतीक' को दुबारा निकालने की जरूरत पड़ी तो उन्होंने 'नया प्रतीक' के नाम से निकाला।

यह भी हो सकता है एक समय-बिन्दु पर आकर हर पत्रिका अपनी प्रासंगिकता खोने लगती है या कहें कि उसे लगने लगता है कि उसने अपना काम पूरा कर दिया है और अब उसे विश्राम करना चाहिए। लघु-पत्रिकाओं की धारा के लिए तो यह और भी ज्वलंत सच है क्योंकि उसके पास तो साधन ही बहुत सीमित होते हैं। इसलिए जितनी भी लघु-पत्रिकाएं निकली हैं या निकल रही हैं सब एक शृंखला की कड़ी हैं और अपनी-अपनी तरह से अपना काम कर रही हैं। 'एक और अन्तरीप' भी उस शृंखला की एक कड़ी है। भले ही बीच में वह कड़ी उस शृंखला से निकल गयी थी पर उसकी जगह अब भी बनी हुई है। इसलिए अगर यह प्रश्न किया जाता है कि जब हिन्दी में इतनी सारी लघु-पत्रिकाएं निकल रही हैं तो 'एक और अन्तरीप' को पुन: निकालने की क्या आवश्यकता थी। यह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
कड़ी कहीं उस शृंखला से निकल कर अलग हो गयी थी अब फिर उससे जुड़ रही है और उस शृंखला को मजबूती प्रदान करने में सहयोग करने आ गयी है।

हम इस पत्रिका को पुनः प्रकाशित करने का जो साहस कर रहे हैं उसके पीछे हमारी कोई महत्वाकांक्षा नहीं है, बल्कि हम तो इसके माध्यम से उस आंदोलन में शामिल होना चाहते हैं जो मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए अनवरत रूप से चल रहा है। आज समय इतना क्रूर और अविश्वसनीय हो गया है कि साधु और डाकू में भेद करना ही कठिन हो गया है। समाज में एक विचित्र प्रकार की अस्थिरता बढ़ती जा रही है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि सारा धन केवल कुछ हाथों में सिमटता जा रहा है और धन कमाने के जो नये-नये तरीके ईजाद हो रहे हैं, उनमें बेईमानी, भ्रष्टाचार, शोषण, अपराध आदि के लिए खुला स्पेस है। नयी तकनीक के विकास ने आदमी को चालाकी और धोखधड़ी की भी नयी तकनीकों का स्वामी बना दिया है। वह बड़ी कुशलता से इन्हीं मूल्यों का ध्वंस करने में लगा है। कुल मिलाकर आज मनुष्य इतना चालाक और शातिर हो गया है कि वह अमेरिका को भी मात कर रहा है, लेकिन मनुष्य की जिजीविषा की अदम्य शक्ति कभी पराजित नहीं होती और अवसर आने पर वह झूठ के सारे तंत्र को नष्ट कर डालती है।

नष्टीकरण की यह प्रक्रिया एक व्यक्ति या एक समूह के द्वारा संचालित नहीं की जा सकती, जिस तरह अमानवीय ताकतों ने स्वतंत्र स्वार्थ-तंत्र विकसित कर लिया है और राजनीति उसे संरक्षण दे रही है उसी तरह इस अभेद्य तंत्र को नष्ट करने के लिए लघु-पत्रिकाएं एक कारगर हथियार हो सकती हैं। हमें इस बात की चिंता नहीं करनी चाहिए कि उनकी प्रसार संख्या कम है, उनका प्रभाव-क्षेत्र बहुत छोटा है या कि आम आदमी तक उसकी पहुँच नहीं है। हमें एक उक्ति सदैव याद रखनी चाहिए, अगर आपने एक भी रोते हुए दिल को हंसा दिया तो सहस्रों कमल आपके हृदय में खिल जायेंगे। तो हमारी नजर तो उन नेत्रों पर होनी चाहिए जिनमें अभाव के आंसू हैं तथा शोषण चक्र की बेबसी से जो पूरी तरह त्रस्त हैं।

लघु-पत्रिका निकालना या साहित्य रचना करना कोई विलासिता नहीं है, बल्कि अपने रक्त से उस हथियार का निर्माण करना है जो मानव-मुक्ति की लड़ाई में कारगर होकर मानव को शोषण चक्र से मुक्त करेगा। 'एक और अन्तरीप' उन्हीं लोगों के साथ है जो मानव-मुक्ति के संग्राम में सक्रिय हैं और उन ताकतों को समूल नष्ट करने पर दृढ़-प्रतिज्ञ हैं जो मानव को शोषण की चक्की में पीस रहे हैं। अगर हम इस दिशा में तनिक भी सहयोग दे सकें तो इस पत्रिका के पुनर्प्रकाशन को सार्थक मानेंगे। पर हम यह भी जानते हैं कि हम बिना लेखकों के सहयोग के इस संकल्प को पूरा नहीं कर सकते। अतः हम सभी लेखक बंधुओं से अनुरोध करते हैं कि वे अपने रचनात्मक सहयोग से हमें मजबूती प्रदान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करें। इतना ही नहीं वे हमें उन दिशाओं की और भी संकेत दें, जिनसे हम अपने संकल्प को पूर्ण करने की ऊर्जा प्राप्त कर सकते हैं।

पुनर्प्रकाशन का प्रथम अंक आपके हाथों में है। हम नहीं जानते कि यह अंक किस सीमा तक हमारे संकल्पों पर रोशनी डाल पाएगा, किंतु हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि आपके हर सुझाव और आपकी हर रचना का हम पूरा सम्मान करेंगे। यह एक अभियान का हिस्सा है और हम आपको इस अभियान का भागीदार बनने का निमंत्रण दे रहे हैं। इसी निवेदन और आशा के साथ कि हमें आपका पूरा सहयोग मिलेगा। यह अंक आपकी सेवा में है।

-प्रेमकृष्ण शर्मा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जटिल समय का सहज कवि : गोविन्द माथुर

■ *अजय अनुरागी*

(इस बार हम विशिष्ट कवि गोविन्द माथुर के कवि कर्म पर विस्तृत विश्लेषण परक सामग्री प्रकाशित कर रहे हैं। प्रत्येक अंक में हम एक विशेष रचनाकार के बारे में विस्तृत आलेख प्रकाशित करेंगे। हम चाहते हैं कि साहित्य की विविध विधाओं के रचनाकारों को इसमें प्रकाशित करके उनके समग्र मूल्यांकन को रेखांकित किया जा सके।)

आज के कठिन समय में गोविन्द माथुर व्यक्ति के रूप में जितने सरल और सहज हैं उतना ही सरल और सहज है उनका कवि कर्म। वे कविता के लिए पृथक् से कोई प्रयास नहीं करते हैं बल्कि जीवन जीते हुए जो कुछ देखते-परखते हैं, वही उनकी कविता में ढल जाता है। वे कविता लिखने के लिए किसी साँचे का भी इस्तेमाल नहीं करते हैं। उन्होंने साँचों और सींखचों के परे अपनी नई काव्य शैली विकसित की है, जो बाह्य तौर पर अति साधारण जान पड़ती है, जिसे पढ़ते हुए यह नहीं लगता कि किसी बड़े कवि की गुरु-गम्भीर कविता पढ़ी जा रही है। साहित्य से इतर आम पाठक भी गोविन्द माथुर की कविताओं को पढ़कर अर्थ समझने में समर्थ होता है। यदि कविताएँ इसी तरह लिखी जाने लगें, तो वे आम पाठक से आत्मीयता पा सकती हैं। कविता और पाठक का सहज रिश्ता फिर से पनप सकता है।

आज बार-बार यह कहा जाता है कि कविता के पाठक नहीं रहे या कविता पाठकों से दूर होती जा रही है। इसका एक कारण कविता का जटिल और दुरूह हो जाना भी है। गोविन्द माथुर इसके अपवाद हैं। आज की कविता जिस तरह से एक नई 'रीतिकाली प्रणाली' पर चल पड़ी है उसमें 'कठिन काव्य का प्रेत' हो जाना ही एक बड़े कवि की कसौटी मानी जाने लगी है। ऐसी कविताएँ पाठक के दिल में तो क्या गले तक में भी नहीं उतर पाती हैं। तब हम भला पाठकों को दोष कैसे दे सकते हैं? कुछ कमियाँ कवियों की भी रही होंगी। यूँ ही पाठक बेवफा नहीं हुआ करते।

गोविन्द माथुर की कविताएँ दुरूहताओं और भयावहताओं से परे हैं। इन्हें पढ़ने के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लिए अतिरिक्त तैयारी या विशेष मानसिक योग्यता की जरूरत नहीं होती है। ये कविताएँ हलचल रहित शालीन शैली में लिखी गई हैं जो पढ़ने के लिए विशेष समय की माँग भी नहीं करती हैं। गोविन्द जी की कविताएँ पढ़ते हुए ऐसा भी नहीं लगता है कि हम मायावी दुनिया में पहुँच गए हैं या किसी अँधेरी, सीलन भरी गुफा में प्रवेश कर रहे हैं। किसी भयानक जंगल में फँस गए हैं या किसी उत्तुंग पहाड़ पर चढ़े जा रहे हैं किसी गहरी खाई में गिरे जा रहे हैं। उनकी कविता में न क्रान्ति का ताण्डव नृत्य है और न ही व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के लिए किए गए विस्फोटक प्रयास हैं। वे भारी-भरकम शब्दों से चौंकाने-डराने का उपक्रम भी नहीं करते हैं। यथार्थ का वीभत्स और भयानक चित्रण तथा विसंगतियों का घटाटोप कुहासा गोविन्द माथुर के काव्य में नहीं मिलता। वे भयावहताओं-भीषणताओं और विसंगतियों-विडम्बनाओं का चित्रण भी सहज रूप में व्यक्त कर देते हैं।

भाव और भाषा का आडम्बर उनकी कविताओं में नहीं है। वे जीवन और रचना में सरलता के आग्रही रहे हैं। उनकी इस विशेषता को प्रकट करते हुए डॉ. हेतु भारद्वाज 'बची हुई हँसी' काव्य संग्रह की भूमिका में लिखते हैं, 'उनकी कविता की खूबी यह है कि यह सब करते समय वे किसी प्रकार के बड़बोलेपन का शिकार नहीं होते। बहुत शोर नहीं करते। तनावों का वितान तानकर पाठक को आतंकित नहीं करते बल्कि अपने शान्त और सहज शब्दों के साथ पाठक के पास आ बैठते हैं। उनकी कविताएँ पाठक से आत्मीय संवाद करने लगती हैं।'

डॉ. विशम्भर नाथ उपाध्याय ने 'शेष रहते हुए' काव्य संग्रह में गोविन्द माथुर के व्यक्तित्व और कृतित्व की सरलता का उल्लेख किया है-'गोविन्द माथुर अपने को कभी आगे नहीं लाते। कभी प्रतिद्वन्द्विता में नहीं पड़ते। कभी बहस नहीं करते। कभी परिदृश्य पर हावी नहीं होते। चुपचाप जो हो रहा है, होता आ रहा है, आजादी के बाद जो विद्रूप, वैषम्य, छल और बल का व्यवस्थाजन्य बिगड़ाव बढ़ता गया है, उसकी बहुत गहरी, स्नायुतोड़क अनुभूतियों से इस कवि की रचनाएँ भरी हुई हैं। गोविन्द माथुर न नए बिम्बों का आखेट करते हैं, न उक्ति वैचित्र्य लाते हैं, न दूर की कौड़ी लाते हैं, न ही फँतासियाँ खड़ी करते हैं। गरज कि प्रचलित समकालीन कविता में स्थितियों की परख, उनका संवेदना और चेतना पर दबाव और आम आदमी की असहायता, सब-कुछ जो हो रहा है, उसकी व्यर्थता और अलगाव का इतना कसैला अहसास है कि उनकी आत्म अभिव्यक्तियाँ अपनी सच्चाइयों, स्थिति के वेधक पर्यवेक्षणों और विषाद की गहराइयों से पाठक और श्रोता को बेचैन कर देती हैं।'

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी 'बची हुई हँसी' के प्रारम्भ में लिखते हैं-'गोविन्द माथुर का शिल्प विशिष्ट है। वे उन दुर्लभ कवियों में हैं, जिनके ऊपर मुझे किसी अन्य कवि का प्रभाव

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
दिखाई नहीं पड़ता। उनका अंदाज बयाँ अपना है। वे आस-पास की घटनाओं और स्थितियों को बिना छेड़े सहज रूप में ऐसा संयोजित करते हैं कि आखिरी पंक्ति तक पहुँचते-पहुँचते पाठक उन परिचित स्थितियों से कुछ नया, अभूतपूर्व पा लेता है। गोविन्द माथुर का यह लगभग निजी शिल्प निहायत सधा हुआ है।'

अब तक गोविन्द माथुर के चार काव्य संग्रह 'शेष होते हुए (1985),' 'दीवारों के पार कितनी धूप (1991),' 'उदाहरण के लिए आदमी (1998)' तथा 'बची हुई हँसी (206)' प्रकाशित हो चुके हैं। वे राजस्थान की हिन्दी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर हैं।

यह कवि गोविन्द माथुर ही है, जो दंभरहित, स्वभावगत सहजता से स्वीकार करता है-

तीस बरस से लिख
रहा हूँ कविताएँ और
अभी तक कविता
लिखने का अभ्यास नहीं हुआ।
... लिख नहीं पाया अच्छी कविता
बन नहीं पाया कवि मैं।

दंभरहित आत्मस्वीकृति में लिखी गई ये पंक्तियाँ कवि की रचना प्रक्रिया को प्रस्तुत करती हैं। कविता धैर्य और अभ्यास से लिखी जाती हैं। ये पंक्तियाँ उन लोगों पर करारा व्यंग्य भी हैं, जो तीस साल तक कविता लिख लेने पर बड़े कवि का तमगा लगाए फिरते हैं तथा स्वयं को वर्तमान कविता का ब्राण्ड मान बैठते हैं।

कविता के स्तर पर गोविन्द माथुर अनुभूति की ईमानदारी को स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त करना चाहते हैं। कवि की चिन्ता है-

क्या वही लिख रहा हूँ
जो कहना चाहता हूँ मैं।

यह आत्मविश्लेषण ही तो अच्छे कवि का निर्माण करता है। प्रत्येक रचनाकार और उसकी रचना निरन्तर संशोधन के दौर से गुजरती है। कोई भी रचना तब तक पूर्ण नहीं होती जब तक कि रचनाकार स्वयं सन्तुष्ट कभी नहीं हो जाता। वास्तविकता यह है कि कोई भी रचनाकार अपनी रचना से पूर्णतः सन्तुष्ट नहीं हो पाता। इसी कारण वह अच्छी से अच्छी रचनाओं का सृजन करता चला जाता है। गोविन्द माथुर रचनात्मक स्तर पर यह विश्लेषण निरन्तर करते रहते हैं। इसलिए उन्हें लगता है-

हर नई कविता
लिखते समय लगता है
पहली बार लिख रहा हूँ।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह स्पष्टवादिता और भोलापन प्रत्येक रचना की जरूरत होता है। जब रचनाकार भीतर से निश्छल और निर्मल होगा, तो उसकी रचना भी निश्छलता और निर्मलता के साथ निःसृत होती है।

वर्तमान परिवेश में रचनाकार के लिए सिर्फ रचना लिखभर लेना ही पर्याप्त नहीं होता है। इस क्षेत्र में सफल होने की चुनौती भी उसके साथ चलती है। गोविन्द माथुर को यह कहते हुए कोई संकोच नहीं होता–

'मुझे असफल भी
कविता में ही होना था।'

अपनी कमियों, कमजोरियों को बिना छिपाए स्वीकार कर लेना कवि की ईमानदारी ही कही जाएगी, जबकि वास्तविकता यह है कि असफल व्यक्ति आत्मविज्ञापनों के द्वारा लगातार अपना ढोल पीटता नज़र आता है। यह भी गोविन्द माथुर की सफलता ही कही जाएगी कि उन्होंने असफलता को भी सफलता में बदल दिया है।

आत्मीय संवाद से संयुक्त गोविन्द माथुर की रचनाओं में बार-बार अपना विश्लेषण प्रस्तुत हुआ है। इस प्रक्रिया में वह अपने ऊपर कटाक्ष करने से भी नहीं चूका है–**'जैसा दिखता हूँ/वैसा हूँ नहीं मैं/जैसा हूँ वैसा/दिखता नहीं।'** यह साफ है कि कवि दुहरे स्तर पर नहीं जीता। वह दरअसल जैसा है वैसा ही दिखाई भी देता है, मगर अधिकांश लोग अन्दर और बाहर से दोहरी-तिहरी भिन्नता लिए हुए होते हैं। गोविन्द माथुर की ऐसी अनेक कविताएँ हैं, जिनमें व्यंग्य दिखाई नहीं देता, किन्तु व्यंग्य होता है।

आत्मलोलुपता और स्वार्थों से क्षीण आज के व्यक्ति में सच देखने, सुनने, कहने की हिम्मत नहीं रही। इसलिए कवि अगर कुछ माँगता है, तो–

'वह शक्ति हमें दो दयानिधे,
हम सच देख सकें
हम सच सुन सकें
हम सच कह सकें।'

मनुष्य की यह हिम्मत क्यों चुकी? कैसे चुकी? यह विचारणीय है। समाज की सम्पूर्ण व्यवस्था इसलिए चरमरा गई है कि मनुष्य के पास यह हिम्मत नहीं है।

कवि माथुर ने मनुष्य के भीतर आए परिवर्तन को भी अनेक कविताओं में व्यक्त किया है। वे अपनी कविताओं में निरन्तर इस बात को रेखांकित करते रहे हैं कि आदमी सहजता से दूर होता जा रहा है जबकि सहजता उसकी पहली शर्त होनी चाहिए। सहज होने पर ही व्यक्ति में मानवीय गुणों का समावेश हुआ करता है। 'थोड़ा-सा आदमी' कविता में कहा गया है–**'आदमी को होना चाहिए/थोड़ा सा आदमी/बचाए रखनी चाहिए**

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
थोड़ी-सी आदमीयत।' इस आदमीयत अथवा मानवीयता को बचाए रखना ही कवि की चिन्ता के मूल में है। 'उदाहरण के लिए आदमी' में उन्होंने लिखा है–

'ये भी क्या जमाना है
अब ढूँढ़ने से भी नहीं/मिलता आदमी
उदाहरण के लिए
कहानियों में रह गया है आदमी।'

जबसे व्यक्ति हाईटैक हुआ है, शहर मैट्रो हुए हैं, संस्कृति में फ्यूजन पसरने लगा है, मकान मल्टीप्लैक्स होने लगे हैं, थड़ियाँ मॉल्स में तब्दील होने लगी हैं, तब से लोगों के भीतर यह बदलाव देखा जाने लगा है। गोविन्द माथुर को 'उदास दिनों में' याद आते हैं–

'मेरे सबसे उदास दिनों में
इतने बुरे नहीं थे लोग
अपने सबसे बुरे दिनों में
सबसे अच्छे मित्रों के साथ रहा मैं।'

यहाँ कवि उदास दिनों को इसलिए याद करता है कि आज वह उदास नहीं है, मगर लोग बुरे हैं। अब कवि बेकारी, गरीबी से निकलकर अच्छे दिन देखने की स्थिति में आया है, तो उसे अच्छे मित्र नहीं मिल पा रहे हैं। मित्रता के स्वभाव में आया यह परिवर्तन कवि को कचोटता है। उस समय बुरे दिन भी अच्छे मित्रों के कारण बुरे प्रतीत नहीं होते थे। भविष्य में अच्छे मित्र बनना और बनाना क्या संभव हो सकेगा? समय का बदलाव मित्रता को छिन्न-भिन्न करने के लिए काफी है। गोविन्द माथुर अपनी स्मृतियों में जिन दिनों की बात करते हैं, उन दिनों सुख और दुःख अत्यन्त साधारण हुआ करते थे। **'तब उदास होने के लिए/कुछ भी जरूरी नहीं था।'** पेड़ों से झरते पत्ते या बादलों से टपकती बूँदें देखकर भी कवि उदास हो जाया करता था, मगर अब उदासी और दुःख के कारण भी बदल गए हैं। अब न तो महानगरों में पेड़ बचे हैं और न ही बारिश से टपकती बूँदों को देखने-महसूसने का समय ही बचा है। अब उदासी के कारण भौतिक हैं जिनसे अभाव, असफलताएँ, प्रतिद्वन्द्विता, लिप्सा, महत्वाकांक्षा, कटुता, ईर्ष्या उत्पन्न होती हैं। उदासी का कारण भी स्वस्थ नहीं रहा। कवि मानता है कि उस समय सबसे उदास क्षणों में भी इतना उदास कभी नहीं रहा जितना आज उदासी के मामूली क्षणों में ही उदास हो जाता है। आज की उदासी अनेक आधि-व्याधियों को भी साथ लिए चली आती है। अनेक तनाव और दबाव व्यति का सन्तुलन बिगाड़ डालते हैं।

जब कवि अपने ही शहर की बात करता है, तो शहर का बदला हुआ मिजाज उसे सुहाता नहीं है। हाईटैक होते शहर ने आपस में एक ही शहर का वासी होने का अपनत्व भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लोगों के बीच से तिरोहित कर दिया है। आपस में लोगों को इस बात की खुशी नहीं होती है कि हम एक ही शहर के वासी हैं। एक ही कॉलोनी अथवा गली में होने पर भी मिलने का कोई उत्साह नहीं रहा। जनसंख्या का दबाव इतना बढ़ गया है कि शहर की भीड़ में एक भी परिचित नहीं दिखाई देता जिससे मिलकर मन की बात साझा की जा सके–

'कभी–कभी दूर तक
एक भी चेहरा परिचित नहीं दिखता
सड़कें पहले से ज्यादा लम्बी हो गयीं
कई बार रास्ता भूल जाता हूँ
अपने ही शहर में
परदेसी रास्ता दिखाते हैं मुझे।'

यह महानगरीय विवशता है, जहाँ भीड़ तो है मगर काम की नहीं। हर तरफ अपरिचितों का जंगल फैला हुआ है जिसने शहर के इस बदलते स्वरूप को देखा है, वह व्यथित हुए बिना नहीं रह सकता। गोविन्द माथुर कहते हैं, **'कौन हूँ मैं? क्या नाम है मेरे पिता का? किस गली/मुहल्ले में रहता हूँ/आजकल इस तरह के प्रश्न/कोई नहीं करता मुझसे/अब कोई मुझे/मेरे पितामह के नाम से नहीं जानता।'**

आजकल परिचय पूछने और बताने का ढंग ही बदल गया है। अब व्यक्ति प्रमुख हो गया है उसका परिवार गौंण। यह परम्परा से उखड़ना है। जड़ों से कटने–काटने की व्यवस्था है। भारतीय समाज व्यवस्था में व्यक्ति के साथ उसके पूरे परिवार को एवं परिवार की पिछली पीढ़ियों को जोड़कर देखा जाता है। व्यक्ति के परिचय की शुरुआत पिता और पितामह का नाम लेने से ही होती है। यह एक आत्मीय समाज व्यवस्था है, जो व्यक्ति केन्द्रित नहीं होकर समाज केन्द्रित हुआ करती है। अब स्थिति बदल गई है। व्यक्ति का परिचय वस्तुओं की तरह होने लगा है। खासकर महानगरों में–

'पूरा शहर/एक बाजार है
हर वस्तु बिकाऊ/और हर व्यक्ति खरीददार
कुछ खुद को बेच रहे हैं/कुछ दूसरों को
अब लोग यह नहीं पूछते/क्या करते हैं आप
अब लोग पूछते हैं/क्या बेचते हैं आप?'

एक ही नगर के वासी बढ़ती दूरियों और उलझी जीवनचर्या के बीच कभी मिलते हैं, तो ऐसा लगता है कि वे दूसरे शहरों से चलकर आए हैं। संचार और सूचना के माध्यम हर हाथ में, हर जेब में होने के बाद भी घनिष्ठों के बीच वार्तालाप महीनों–महीनों नहीं हो पाता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'एक ही नगर में रहते हुए
एक कवि को दूसरे कवि
की खबर नहीं है
... अपने ही नगर में पाँचों कवि
इस तरह मिलते हैं गले
मिले हों वर्षों बाद
जैसे आए हों दूसरे नगरों से।'

महानगरीकरण के बढ़ने के साथ-साथ संवेदना का स्रोत भी सूखता चला गया है। गोविन्द माथुर को न केवल मनुष्यों की ही चिन्ता है बल्कि उन पक्षियों की भी चिन्ता है, जिन्हें महानगर में रहने-खाने की व्यवस्था नसीब नहीं हो पा रही है-

'पता नहीं कहाँ घोंसला
बनाती होंगी इस नगर की चिड़ियां
न घरों में रोशनदान हैं न ही टँगी
हैं बुजुर्गों की तस्वीरें
किसी कोने में सहमा हुआ कबूतर नहीं आता
न ही किसी बच्चे को फिक्र करने की जरूरत है
आखिर यह चिड़िया उड़ क्यों नहीं रही।'

गोविन्द माथुर स्मृतियों को सृजन के दायरे में ले आते हैं। वे स्मृतियों के आईने से अतीत में झाँकते हैं और वर्तमान यथार्थ को देखकर उन्हें हर बार उदास होना पड़ता है-**'जिन मित्रों के साथ/जमती थी महफिल/मिलते थे हर रोज/घण्टों खड़े रहा करते थे चौराहे-दोराहे पर/वे बचपन के मित्र/जीवन से निकलकर/तस्वीरों में रह गए हैं।'**

गोविन्द माथुर ऐसे कवि हैं, जो कवि या कलमकार के लिए व्यावहारिक होना जरूरी मानते हैं। यदि कलमकार व्यावहारिक नहीं होगा तथा सामाजिक दायित्वों को निभाना नहीं सीखेगा तब तक वह एक नागरिक के रूप में सफलता अर्जित नहीं कर पाएगा। कवियों की दैनिक जीवन में निरपेक्षता या अनुपयोगिता पर प्रश्नचिह्न खड़ा करते हुए गोविन्द माथुर लिखते हैं-

'किसी काम के नहीं होते कवि
बिजली का उड़ जाए फ्यूज
तो फ्यूज बाँधना नहीं आता
नल टपकता हो तो टपकता रहे रातभर।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह कलमकारों या कलाकारों की व्यवहारहीनता है। उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि वे सामाजिक अथवा पारिवारिक प्राणी भी हैं और परिवार के हर कार्य में उनकी हिस्सेदारी होनी चाहिए। उन्हें भी आम आदमी की तरह दैनिक जीवन के जरूरी काम आने चाहिए। घर के छोटे-छोटे कामों से जब कवि बचने लगता है, तभी तो उसे निकम्मों की श्रेणी में रखा जाता है। घरवाले भी उसे तवज्जो नहीं देते। इस बहाने कवि व्यंग्य करता है-

'कौन पूछता है कवियों को
अच्छे पद पर हों तो बात और है।'

एक रचनाकार को हमेशा कर्मशील रहना चाहिए और एक अच्छा इन्सान भी बने रहना चाहिए। गुटबाजी अथवा खेमेबाजी से हम किसी कवि को स्वीकृत या तिरस्कृत नहीं कर सकते। गोविन्द माथुर ने कवि बिरादरी पर ही व्यंग्य कसा है-

'हम उन्हें कवि नहीं मानते
क्योंकि वे हमारे गुट में नहीं हैं।'

जब एक रचनाकार समाज के आचरण पर प्रश्न खड़ा करता है, तो क्या वह स्वयं के आचरणों पर भी कभी विचार करता है क्या? युवा कवि कविता में गोविन्द माथुर ने नए कवि के आचरण को ही कटघरे में खड़ा किया है।

'युवा कवि होने के लिए/लबादे की तरह विद्रोह ओढ़े रहना चाहिए
सुविधा भोगते हुए भी
हमेशा असन्तुष्ट और नाराज दिखते रहना चाहिए
हर समय होठों पर
टिकाए रखना चाहिए किंग साइज सिगरेट
हर शाम शराब पीते हुए
अपने वरिष्ठ कवियों को गाली देते रहना चाहिए।'

असल में चर्चा कविता की होनी चाहिए, मगर अफसोस चर्चा में कवि बने रहते हैं। इस कारण भी कविता पाठक से दूर हुई है। किसी भी रचना या कृति का विश्लेषण निष्पक्ष होना चाहि, पर ऐसा नहीं हो पाता। स्थिति यह है कि-

'साहित्य के केन्द्र में कविता नहीं
कविता के केन्द्र में कवि हैं, इन दिनों
कवि होने के लिए कविता लिखना जरूरी नहीं है
जरूरी है कविता के केन्द्र में बने रहना।'

जाहिर है गोविन्द माथुर कविता लिखने को ही जरूरी मानते रहे हैं। अपना अतीत सबको अच्छा लगता है। कवि गोविन्द माथुर को भी स्मृतियों में लौटना सुहाता है। वे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Sai Nili Memorial College Of Education Bantalab Jammu
बचपन की स्मृतियों में लौटकर यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं–

'उसके पास/अपने खिलौने नहीं थे/न ही वह कभी/खिलौनों के लिए/मचलता था।' गोविन्द माथुर उस अभावों में पलने वाले बच्चे का स्मरण करते हैं जिसके पास खेलने के लिए खिलौने भी नहीं थे और वह इतना समझदार भी बन गया था कि खिलौनों के लिए माँग भी नहीं करता था। गरीबी समझदारी ला देती है। कवि ने बाल संवेदना के माध्यम से भी महत्वपूर्ण मुद्दों पर बड़ों का ध्यान केन्द्रित किया है। यह सब जानते हैं कि बच्चों से घर सार्थक लगता है। वे घर, परिवार, दुनिया, प्रकृति से बड़ों को जोड़े रखते हैं। कवि की एक महत्वपूर्ण कविता है, 'बच्चे जानते हैं।'

'बच्चे जानते हैं
घर का अर्थ
बच्चे दिखाते हैं हमें
चिड़ियाघर का रास्ता
बच्चे ले जाते हैं/हमें हमारे बचपन में
बच्चे जोड़ते हैं हमें।'

बच्चों को जीव-जन्तुओं से विशेष लगाव होता है। कवि बच्चों की निश्छलता और बिल्ली की चंचलता को एक सन्दर्भ में प्रस्तुत करता है–

'बच्चे खुश होते हैं बिल्ली को देखकर
बच्चे नहीं जानते उनका दूध पी जाती है बिल्ली।'

सोते हुए बच्चे को देखकर भी कवि के मन में कविता का जन्म हो जाता है–

'सोते हुए बच्चे
कितने अच्छे लगते हैं
सोते हुए बच्चे
दूध नहीं माँगते
खिलौने नहीं माँगते।'

यहाँ सोते हुए बच्चों के पीछे भी कवि का तर्क है। एक यथार्थ है। एक छिपा हुआ रहस्य है, जो अभाव की किवाड़ों से बन्द है।

गोविन्द माथुर की कुछ रचनाएँ स्त्रियों पर भी हैं, जिनमें वह स्त्री जो घर, परिवार में दिन-रात खटती है और समाज से सबको जोड़े रखती है, की संवेदना को भी सहजता के साथ उभारा है। गोविन्द जी स्त्री की पीड़ा को सरल ढंग से चित्रित करते हैं। आडम्बर युक्त भारी-भरकम शब्दों से स्त्री संघर्ष को बोझिल नहीं बनाते। एक तरह से उन्होंने स्त्री का जीवन गीत लिखा है–

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'वह स्त्री/बुहारती थी ये घर
हर वस्तु को रखती थी निश्चित जगह पर
हर वस्तु अपनी जगह पर थी
हर व्यक्ति अपनी जगह पर
न वस्तु लावारिस थी न व्यक्ति।'

यह कर्मशाला माँ अथवा पत्नी हो सकती है। जो घर के प्रत्येक व्यक्ति और वस्तु को सही जगह पर रखकर सजाए-सँवारे रखती है। वही समाज से सबको जोड़ने की कड़ी बनती है-

'वह स्त्री थी तो घर था
घर में आते थे मेहमान
उसे मालूम था एक-एक रिश्ता
उस स्त्री से था एक समाज।'

यह कटु सच्चाई है जिस स्त्री की हम निरन्तर उपेक्षा करते रहते हैं, कवि ने उस स्त्री की परिवार भक्ति और निष्ठा को कृतज्ञता के साथ प्रकट किया है। यह स्त्री घर के एक-एक बर्तन को पहचानती है। कपड़े देखकर उम्र बता देती है, उसे पता है कौनसे कपड़े में कहाँ टाँका लगाना है, किसमें बटन टाँकना है, अँधेरे में भी हर सदस्य की वस्तु को ढूँढ़ लाती है। मगर पुरुष क्या करता है उसके साथ-

'जिस स्त्री ने/पहचान दी घर को
उस स्त्री की पहचान नहीं थी
जली हुई देह दी।'

स्त्री के साथ समाज द्वारा जो ज्यादतियाँ की जा रही हैं, उसे भी कवि गंभीरता से उजागर करता है-

'एक बार फिर/फाड़े जाएँगे कपड़े नारायणी के
और उसे/स्वीकार करना होगा कि
उसके साथ
नहीं हुआ बलात्कार।'

इन क्रूरताओं और कुटिलताओं में स्त्री के विरोध को दबा देने तथा मांस के हिस्से में शामिल होने वाले शासन और प्रशासन से संरक्षण प्राप्त दबंग, मलंग और कामुक व्यक्ति को कवि कभी क्षमा नहीं करना चाहता।

'भेड़िये या गिद्ध
दोनों में से कोई भी शेर से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Digitized by Eternal Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हाथ मिलाते हैं

और/भागीदार हो जाते हैं

नर्म मांस के लोपड़ों में

शासन/और मजबूत हो जाता है।'

कुँवारी लड़कियों की उस समस्या को भी कवि ने अपनी कविता का विषय बनाया है जिसमें व अपने घर की जरूरतों को पूरा करने के लिए काम करती रहती हैं और अन्त में उनका अपना व्यक्तित्व नहीं बन पाता है–

'धीरे - धीरे

कुँवारी बैठी लड़कियों की

कमाई बन जाती है

घर की जरूरतें

कुँवारी बैठी लड़कियाँ चलती हैं घर

देती हैं आवारा भाई का जेबखर्च।'

एक अन्य कविता में तीन बहनों की पीड़ा को कवि ने नए कोण से देखा है। समाज की सोच की लघुता को साधारण रूप से प्रस्तुत करता हुआ कवि कहता है–

'तीनों बहिने समाज की सहानुभूति

और प्रेम से छली जा रही थीं।'

'पत्नी के साथ जीवन' में पति द्वारा पत्नी को महत्व व प्रेम न दिए जाने के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण सन्दर्भों के साथ कवि ने कुछ प्रश्न भी खड़े किए हैं–

'अपनी ही पत्नी के

साथ कहीं गए ऐसे

जैसे अपराध कर रहे हों

घूम रहे हों पराई स्त्री के साथ

प्रशंसा के दो शब्द नहीं कहे कभी

जली कटी जरूर कहते रहे।'

कवि गोविन्द माथुर प्रतिबद्ध कवि हैं। वंचितों, पीड़ितों की समस्याएँ भी उनके दिमाग में निरन्तर घूमती रहती हैं। शासन की दुहरी नीति पर कटाक्ष करते हुए लिखते हैं–

'तुमने कभी सोचा भी नहीं होगा

देश के कर्णधार ही

तुम्हें लूटने लगेंगे

और तुम/अपनी झोंपड़ियों के पीछे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तेज कच्ची शराब में धुत
समाजवाद आने की प्रतीक्षा में
गरीबी हटाओ नारे पर विश्वास कर
देशी गालियों का शुद्ध प्रयोग कर रहे होंगे।'

यहाँ कवि ने गरीबी का यथार्थ प्रस्तुत किया है। सत्ता के द्वारा किए जा रहे झूठे वादों को भी कवि अपनी तरह से व्यक्त करता है–

'मेरे चेहरे पर घाव
हथियारों के नहीं हैं
उन नारों के हैं
जो हर मौसम में फेंके गए हैं।'

कवि जानता है कि सन्दर्भों में भटकने से कुछ नहीं होगा जब तक कोई ठोस निर्णय या कठोर कदम नहीं उठाए जाएँगे तब तक कोई हल निकलने वाला नहीं है–**'और हम/संदर्भों में भटकना छोड़कर/किसी हल की ओर बढ़ें।'**

गोविन्द माथुर का मानना है कि, **'चेहरे पर/बनावटी मुस्कान लिए ही/जब जीना है तो/ जिन्दगी/सिर्फ/मौत का/इन्तजार लगती है।'** वे मौत के इन्तजार में जीना नहीं चाहते। यह जो तटस्थता और स्थितिप्रज्ञता ने हर मौसम को बर्फ कर दिया है। इसी का परिणाम है कि हमें उजाले की पहचान नहीं रही है। एक अभ्यस्त सी जिन्दगी जीते रहना और रोटी के साथ कविता को पचाते रहना कवि को पसन्द नहीं है। इसी कारण इस लम्बी यात्रा में कवि अकेला रह जाता है **'मैं ही/उन लोगों के साथ/हो गया था/जिनकी यात्रा/एक बिन्दु पर आकर/रुक गई/और मैं अपना पथ भूल गया।'**

गोविन्द माथुर का रास्ता अलग है। वह बीच यात्रा में रुकना नहीं चाहता। वह निरन्तर चलना चाहता है। वह उन लोगों को छोड़ चुका है जो यात्रा में ठहर गए हैं। कवि अकेला ही आगे बढ़ रहा है– **'और जिस चक्रव्यूह में फँसा हूं/उसे तोड़ना मुझे नहीं आता/इतिहास में मेरा नाम नहीं होगा/क्योंकि मैं अभिमन्यु नहीं हूँ।'** कवि ने जो स्वप्न देखे थे वे– **'रेत के नीचे/बहुत नीचे/दब गए/मेरी/खुली आँखों के स्वप्न।'**

गोविन्द माथुर ने समाज की ज्वलित समस्याओं पर भी कविताएँ लिखी हैं। धर्म, सम्प्रदाय, ढोंग, पाखण्ड, बाजारवाद, विज्ञापन, कर्फ्यू आदि। वहाँ भी वे सहज शैली से मानवीयता के पक्षधर रहे हैं। स्वार्थलिप्सा की प्रवृत्ति ने व्यक्ति को इतना निजी बना दिया है कि–

'वे समेट लेना चाहते हैं
पृथ्वी पर बिखरी सम्पदा

CC-0. Panini Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सुख, वैभव और यश
तिजोरी में भर लेना चाहते हैं
सबके हिस्से की खुशी।'

सबके हिस्से की खुशी को हड़पना न्यायसंगत नहीं है। यह भी एक तरह से लूट-खसोट ही है। कवि बाजारवाद को आतंकवाद से जोड़ता है। दोनों का उद्देश्य लोगों को डराना और विनाश करना होता है। बाजार डराता नहीं बल्कि बुलाता है। यह बुलावा और आकर्षण ही कवि में भय पैदा करता है। विज्ञापन के हथियारों से लैस बाजार ने व्यक्ति को उपभोक्ता में बदल दिया है। ऐसे उपभोक्ता में जो विवश होकर बाजार की ओर दौड़ पड़ा है, जहाँ से जिन्दा लौटना संभव नहीं है–

'वे आतंकवादी नहीं हैं,
पर पूरे बाजार में
आतंक है उनका
उन सभ्य/सुसंस्कृत लोगों से
बेहद डर लगता है मुझे।'

ऐसे सभ्य और सुसंस्कृत लोगों की पहुँच घर तक भी हो गई है। घर में भी बचना अब संभव नहीं रहा।

कवि गोविन्द माथुर की विशेषता है कि गन्तव्य तक पहुँचने के लिए उसने शॉर्टकट नहीं ढूँढ़े हैं। जिस लम्बे रास्ते से कवि ने यात्रा की है वह उसी के द्वारा निर्मित है। वह स्मृतियों से यथार्थ को टटोलता है। अपनी कविता में कवि 70 वर्षीय सेवानिवृत्त विजय नारायण के माध्यम से व्यक्ति के वयोवृद्ध सत्य से साक्षात्कार कराता है–

'पुरानी वस्तुओं की तरह
अप्रासंगिक हो चुके थे
न उन्हें कोई पूछता था
न वे किसी से कुछ कहते।'

ऐसा क्यों होता है कि एक व्यक्ति अपने अन्तिम समय में अप्रासंगिक हो जाता है? उससे कहने-सुनने वाला कोई नहीं रहता? क्या समाज उसकी उपलब्धियों को स्वीकार करना छोड़ देता है? क्या वह सिर्फ मृत्यु की प्रतीक्षा करने वाला रह जाता है? ये सब ऐसे बुनियादी प्रश्न हैं, जो इन पंक्तियों से ध्वनित होते हैं।

कुछ लोग व्यक्ति और रचना के स्तर पर अलग-अलग जीने के पक्षधर होते हैं। वे अपनी रचनाओं में अपने शहर या जन्मस्थल को बार-बार स्मरण करते हैं। गोविन्द माथुर का मानना है–

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'वे अपनी कविताओं में
लौट-लौटकर आते रहे
जाते रहे अपने शहर
जीवन में नहीं लौटना चाहते
अपने शहर अपने घर
कविताओं में घर लौटना
घर लौटना नहीं होता।'

यह कवि अपना शहर छोड़कर दूसरे शहर में नहीं जाना चाहता। उसके अपने तर्क हैं जो मानने लायक हैं **'जब नहीं बचा/इलाहाबाद में इलाहाबाद/लखनऊ में लखनऊ/भोपाल में भोपाल/पटना में पटना/दिल्ली में दिल्ली/तो क्यों जाऊँ मैं/जयपुर छोड़कर/किसी और शहर में/क्या सिर्फ यही कहने/अब जयपुर में भी नहीं/बचा जयपुर।'**

कवि ने नई पीढ़ी को सूक्ष्मता के साथ देखा-परखा है। उसने पुरानी और नई पीढ़ी के संघर्ष के अन्तर को भी अनुभव किया है। तभी तो वह लिख पाया है-

'मेरे संघर्ष से बहुत अलग है
इनका संघर्ष
मैं इनकी गति को रोक नहीं सकता
सिर्फ टोक सकता हूँ हर बात पर।'

एक और उल्लेखनीय कविता में कवि अपने पिता से जवाब चाहता है। यह कविता आक्रोश और व्यंग्य से भरी हुई है मगर जिन प्रश्नों के जवाब यह अपने पिता से चाहता है वे महत्त्वपूर्ण हैं।

'मेरे पिता जवाब दो
मैं क्या जवाब दूँगा
... वो जब पूछेगा मुझसे
तुम क्यों नहीं हुए सभ्य
वो जब पूछेगा मुझसे
तुम क्यों नहीं हुए भ्रष्ट
वो जब मुझसे पूछेगा
तुमने क्यों नहीं कमाया धन
मैं उसे क्या जवाब दूँगा?
... मैं असभ्य हूँ

CC-0. Panjab University Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2015-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क्योंकि मैं व्यवहार कुशल नहीं हूँ
मैं व्यक्तियों का उपयोग करना नहीं जानता
सम्बन्धों को भुनाना नहीं आता।'

यही नहीं कवि और कटु होकर पिता से जवाब चाहता है कि तुमने मुझे पैदा क्यों किया? जब मुझे अभाव और गरीबी की दुनिया ही सौंपनी थी, तो मुझे पैदा नहीं करना चाहिए था–

'मुझे जन्म देना/तुम्हारा उद्देश्य नहीं था
शायद एक जिस्मानी ऊब से/मेरा जन्म हुआ होगा
तो किसी निरर्थक क्षण को/मुझमें क्यों नष्ट किया।'

इसके आगे बढ़कर कवि गरीबी की परम्परा को भी उजागर करता है–

'तुम शोषित थे
मैं शोषित हूँ
मेरा पुत्र भी शोषित होगा।'

कवि गोविन्द माथुर अपनी कविताओं में न केवल स्मृतियों में पुरातन को सहेजते हैं, बल्कि अपने यथार्थ में आधुनिकता के अनेक पहलुओं से भी टकराते हैं। उनकी स्मृति में जयपुर शहर है और जयपुर शहर के नष्ट-भ्रष्ट होते प्रतीक हैं, तो उनकी आँखों में बदलते हुए शहर और शहरवासियों का चित्र भी है। वे समस्याएँ भी हैं, जो शहरीकरण और स्वार्थीकरण से बढ़ रही हैं। पुरानी पीढ़ी के अप्रासंगिक हो जाने का दर्द है, तो नई पीढ़ी के नए संघर्षों की तीव्र गति भी है, जिसे रोक पाना संभव नहीं है। उनकी रचनाओं में सामान्य मान बैठे वह स्त्री रूपी माँ या पत्नी भी है जो छोटे-छोटे दु:खों को जोड़-गाँठ करके सुख की चादर सिल देती है। जो परिवार और घर के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन और व्यक्तित्व होम कर देती है, किन्तु फिर भी उसका अस्तित्व नहीं बन पाता है। पीड़ित, दु:खी, दरिद्रजनों की उपस्थिति और उनकी स्थितियों का सूक्ष्म विश्लेषण भी कवि की कविताओं में मौजूद है।

कवि गोविन्द माथुर ऐसे सहज कवि हैं जिनकी कविताओं का कथ्य एवं शिल्प भी सहजता लिए हुए है, जिन्हें पढ़ना अपने जीवन को पढ़ने के समान ही आत्मीय लगता है।

1, न्यू कॉलोनी, झोटवाड़ा-पंखा, जयपुर-302012
मो. : 9887069878, 9468791896

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गोविन्द माथुर की कविताएँ

कविता का अभ्यास

तीस बरस से लिख
रहा हूँ कविताएँ और
अभी तक कविता
लिखने का अभ्यास नहीं हुआ

हर नयी कविता
लिखते समय लगता है
पहली बार लिख रहा हूँ
शिल्प बन नहीं पाया
मुहावरा ढूँढ नहीं पाया
सीख रहा हूँ भाषा अभी
चिंता रही कैसे संप्रेषित हो
क्या वही लिख रहा हूँ
जो कहना चाहता हूँ मैं

पता नहीं बहुते से कवि
कैसे कर लेते हैं अभ्यास
जो लिखते हैं, कविता हो जाती है
कहा भी है किसी कवि ने
करत-करत अभ्यास के
जड़मति होत सुजान
सुजान नहीं हो पाया
जड़मति रहा मैं
लिख नहीं पाया अच्छी कविता
बन नहीं पाया कवि मैं
मेरे जैसे लोग।

बचा हुआ प्रेम

मेरे पास नहीं रहे
कभी इतने शब्द
व्यक्त कर सकूं दुख
दे सकूं सांत्वना
बोल सकूं झूठ
कह सकूं सत्य
चुप ही रहा
आत्मीय जनों के बीच

मैंने बचाए रखे शब्द
कविता के लिए
मेरी कविताएं
नहीं पहुंची उन तक
जिनसे मैंने किया प्रेम

एक यातना है
प्रेम करते हुए चुप रहना

जिस दिन बोलूंगा मैं
सबसे खराब व्यक्ति होऊंगा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Sandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चुप ही रहा मैं
ताकि बची रहें कविताएं
बचा रहे प्रेम।

समय बहुत खराब है

समय बहुत खराब है
कहा करते थे पितामह
और सुना करते थे पिता
तब हमारे घर में घड़ी नहीं थी

समय बहुत खराब है
कहा करते थे पिता
और सुना करता था मैं
तब हमारे घर में एक दीवाल घड़ी थी
हर समय उसका
पेंडुलम हिलता रहता था
टिक-टिक की आवाज
अहसास कराती रहती
समय के चलते रहने का
पिता रुकने नहीं देते थे समय
प्रतिदिन चाबी भरते घड़ी में

तीस बरस पहले
जब मैंने नब्बे रुपए की
हाथ घड़ी खरीदी
तब भी समय ठीक नहीं था
तब पितामह नहीं रहे थे और पिता भी
मां कहा करती थी समय बहुत खराब है

मैं अपनी घड़ी में समय
ठीक रखने की कोशिश करता था
कभी विविध भारती से कभी
रेडियो सीलोन से समय मिलाता रहता था।

प्रेम करते हुए लोग

प्रेम करते हुए लोग
अक्सर रहते हैं चुप-चुप

प्रेम करते हुए लोग
अक्सर रहते हैं बेखबर
प्रेम करते हुए लोग
कुछ नहीं सोचते
प्रेम के सिवाय

प्रेम करते हुए लोग
अक्सर रहते हैं घबराए

प्रेम करते हुए लोग
अक्सर रहते हैं चौकन्ने

प्रेम करते हुए लोग
अक्सर पकड़े जाते हैं
प्रेम करते हुए।

काम से लौटती स्त्रियाँ

जिस तरह हवाओं में
लौटती है खुशबू
पेड़ों पर
लौटती हैं चिड़ियां
शाम को घरों को
लौटती हैं काम पर गयी स्त्रियाँ
सारा दिन बदन पर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निगाहों की चुभन महसूसती
फूहड़ और अश्लील
चुटकुलों से ऊबी
शाम को घरों को
लौटती हैं काम पर गयी स्त्रियां

उदास बच्चों के लिए टाफियां
उदासीन पतियों के लिए
सिगरेट के पैकिट खरीदती
शाम को घरों को
लौटती हैं काम पर गयी स्त्रियां

काम पर गयी
स्त्रियों के साथ घरों में
लौटता है घरेलूपन
चूल्हों में लौटती है आग
दीयों में लौटती है रोशनी
बच्चों में लौटती है हंसी
पुरुषों में लौटता है पौरुष

आकाश अपनी
जगह दिखाई देता है
पृथ्वी घूमती है
अपनी धुरी पर
शाम को घरो को
लौटती हैं काम पर गयी स्त्रियां।

कविता से कोई नहीं डरता

किसी काम के नहीं होते कवि
बिज़ली का उड़ जाए फ्यूज
तो फ्यूज बांधना नहीं आता
नल टपकता हो तो
टपकता रहे रात भर

चाहे कितने ही कलाप्रेमी हों
एक तस्वीर तरीके से
नहीं टांग सकते कमरे में

कुछ नहीं समझते कवि
पेड़-पौधों और फूलों के
विषय में खूब बातें करते हैं
छांट नहीं सकते
अच्छ तुरई और टिण्डे
जब देखो उठा लाते हैं
गले हुए केले और आम

वे नमक पर लिखते हैं कविता
दाल में कम हो नमक
तो उन्हें महसूस नहीं होता
वे रोटी पर लिखते हैं कविता
रोटी कमाना उन्हें नहीं आता
वे प्रेम पर लिखते हैं कविता
प्रेम जताना उन्हें नहीं आता

कवियों का हो जाए ट्रान्सफर
तो घूमते रहते हैं सचिवालय में
जब तक सुरक्षा कर्मचारी
बाहर कर देता है
प्रशासनिक अधिकारी
मिलने का समय नहीं देते
कौन पूछता है कवियों को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अच्छे पद पर हों तो बात और है
कविता से कोई नहीं डरता
कवियों से अच्छे तो
साप्ताहिक अखबारों के पत्रकार हैं
राजनैतिक दलों के कार्यकर्ता हैं
कोई भी काम करा लाते हैं

कवि कविता लिखते हैं
अपने आसपास के माहौल पर
प्रकाशित होते हैं सुदूर
अपने घर में भी
उन्हें कोई नहीं मानता
अपने शहर में
उन्हें कोई नहीं जानता

कवियों को तो
होना चाहिए संत-फकीर
होना चाहिए निराला-कबीर।

युवा कवि

युवा कवि होने के लिये
लबादे की तरह विद्रोह ओढ़े रहना चाहिए
सुविधा भोगते हुए भी
हमेशा असंतुष्ट और नाराज दिखते रहना चाहिए
हर समय होठों पर
टिकाए रखना चाहिए किंग साईज सिगरेट

हर शाम शराब पीते हुए
अपने से वरिष्ठ कवियों को गाली देते रहना चाहिए

युवा कवियों को अक्सर
देर से पहुंचना चाहिए कवि गोष्ठियों में
पीछे की कुर्सी पर बैठ कर
फब्तियां कसते रहना चाहिए अन्य कवियों पर
अपनी बारी आने पर
अनिच्छा दर्शाते हुए
पढ़ डालनी चाहिए आठ दस कविताएं

कविता लिखने से कुछ नहीं होता
कविता लिखने से पुरस्कार भी नहीं मिलता
युवा कवियों को कविता से इतर भी
कुछ करते रहना चाहिए
मसलन बताते रहना चाहिए
अपनी नयी प्रेमिकाओं के नाम
या नशे में खींच लेना चाहिए
किसी आलोचक के कमीज का कालर

चर्चा में कविता नहीं
कवियों को बने रहना चाहिए
बहुत कठिन समय है यह
साहित्य के केन्द्र में कविता नहीं
कविता के केन्द्र में कविता नहीं
कविता के केन्द्र में कवि हैं इन दिनों
कवि होने के लिए कविता लिखना जरूरी नहीं है
जरूरी है कविता के केन्द्र में बने रहना
युवा कवियों के लिए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पूरी ऊर्जा के साथ अपना विरोध करना सीखें : हेतु भारद्वाज

■ *डॉ. नरेन्द्र इष्टवाल*

(इस बार हमने 'अक्सर' के सम्पादक एवं वरिष्ठ साहित्यकार हेतु भारद्वाज से वर्तमान साहित्यिक परिदृश्य पर लम्बी व खुली बातचीत की। उनका आग्रह था कि घिसे-पिटे सवालों की बजाय मुद्दों पर खुलकर बात होनी चाहिए। हमने प्रयास किया कि उनसे साहित्यिक परिदृश्य की स्थितियों पर उनकी राय जानें। 75 वर्ष की उम्र में हेतु भारद्वाज साहित्य के क्षेत्र में पूरी तरह सक्रिय हैं और सभी घटनाओं पर अपनी बेबाक राय देते हैं। इस बातचीत में भी उन्होंने हमारे सवालों पर खुलकर अपनी राय रखी। इस बातचीत पर पाठकों की प्रतिक्रिया आमंत्रित है। हम प्रयास करेंगे कि आगामी अंकों में इसी प्रकार की बेबाक बातचीत 'एक और अंतरीप' में छापें।)

- **हिन्दी साहित्य का जो वर्तमान परिदृश्य है, उसका आकलन आप किस तरह करते हैं?**
- आज के साहित्यिक वातावरण का आकलन हम राजनीतिक परिदृश्य को सामने रखकर कर सकते हैं। हम देख सकते हैं कि राजनीति हमारे लिए एक धन्धा रह गई है और उसमें खुशामदी और स्वार्थी तत्व हावी हैं। चारों ओर घोटालों का जोर है। जितनी बेईमानी आज के नेता और अफसर कर रहे हैं, वह कल्पनातीत है। क्या इस अराजकता का प्रभाव हमारे साहित्यिक परिदृश्य पर नहीं पड़ेगा? अधिकतर साहित्यकार किसी न किसी रूप में राजनीतिक लोगों से जुड़े हुए हैं। इसका कारण यह है कि जो सार्वजनिक संस्थाएँ हैं, जिन पर हम साहित्यकारों को पदासीन कर सकते हैं, सब राजनीतिज्ञों के कब्जे में हैं। बिना राजनीतिक प्रश्रय के हम किसी साहित्यिक संस्था में प्रवेश नहीं पा सकते। चाहे केन्द्रीय साहित्य अकादमी हो, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान हो, प्रसार भारती हो अथवा प्रदेशों की अकादमियाँ हों, सर्वत्र साहित्य पर राजनेता हावी हैं। साहित्यकारों का आचरण राजनेताओं जैसा ही है। घनघोर गुटबंदी और अपने-अपनों को स्थापित करने की कोशिश! (थोड़ा रुककर) आपके प्रदेश में इतनी सारी अकादमियाँ हैं। ढाई साल से उनका काम चल रहा है। आराम से। बिना अध्यक्षों के मनोनयन। राजस्थान

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi, Memorial College Of Education Sanganer, Jaipur

साहित्य अकादमी, उदयपुर राजस्थान की पहली बड़ी अकादमी है पर कांग्रेसराज में वह नौकरशाही के भरोसे चल रही है। सरकार को कोई तकलीफ नहीं। लेखक समुदाय कोई संगठित विरोध नहीं कर रहा, क्योंकि अधिकांश लेखक अध्यक्ष बनने की दौड़ में हैं। कुछ लोग तो प्रयास कर थक चुके हैं और वे निराश भी हैं। कुछ दलाल किस्म के साहित्यकार इस तिकड़म में अभी भी हैं, उनका आदमी अध्यक्ष बने ताकि वे अपनी चलाते रहें। सरकार उदासीन है, पर लेखकों की ओर से भी कोई प्रतिरोध नहीं है, क्योंकि कोई सरकार को नाराज नहीं करना चाहता।

○ **क्या आप इसका कोई उदाहरण दे सकते हैं?**

○ एक उदाहरण देता हूँ। मैं तब राजस्थान साहित्य अकादमी का अध्यक्ष था। वह पहला अवसर था जब वार्षिक और पुरस्कार समारोह में कोई नेता मंच पर नहीं था। नागार्जुन आए थे, रघुवीर सहाय आए थे, शांति महरोत्रा, ओमप्रकाश निर्मल, अवधनारायण मुद्गल जैसे अनेक बाहर के रचनाकार थे। समारोह के अन्तिम सत्र में किसी लेखक ने यह प्रस्ताव रखा कि सरकार को सुझाव भेजा जाए कि हेतु भारद्वाज को ही सरकार अकादमी का अध्यक्ष बनाए। वरिष्ठ कवि और चिंतक डॉ. नन्दकिशोर आचार्य ने यह प्रस्ताव भी रखा कि सरकार को यह भी लिखा जाए कि अगर सरकार लेखकों के इस प्रस्ताव को नहीं मानेगी, तो राजस्थान के लेखक अकादमी का बहिष्कार करेंगे। आचार्य जी के इस प्रस्ताव पर आकर सुई रुक गई और तर्क दिए गए कि हम सरकार को बाध्य करने वाले कौन होते हैं? खैर, प्रस्ताव तो पारित हुआ और सर्वसम्मति से हुआ और सरकार को भेज दिया गया पर आचार्य जी का सुझाव नहीं माना गया। मेरे लिए तो यही प्रसन्नता की बात थी कि इतना बड़ा लेखक समूह मेरे पक्ष में था। (यद्यपि कुछ लोगों से यह भी सुना कि यह प्रस्ताव हेतु भारद्वाज द्वारा ही नियोजित था) पर सरकार को यह प्रस्ताव नहीं मानना था न उसने माना।

मैं तो यह कहना चाहता हूँ कि अब किसी लेखक को अध्यक्ष पद स्वीकार करना बड़ी चुनौती होगा, क्योंकि एक तो अकादमी की काफी दुर्दशा हो चुकी है और उसे पटरी पर लाने के लिए मनोनीत होने वाले लेखक को बहुत परिश्रम करना होगा। हो सकता है कि उसका कार्यकाल समाप्त होने से पहले नई सरकार बने और वह कांग्रेस की नहीं होकर भाजपा की आ जाए, तो अध्यक्ष को हर हाल में हटना ही होगा। तो थोड़े से दिन के लिए पद को स्वीकार करने से क्या लाभ? जब सरकार ने इतना वक्त व्यर्थ कर लिया है, तो दो वर्ष और सही। सरकार की प्राथमिकताओं में अकादमियाँ हैं ही नहीं। किसी ने यह नहीं पूछा कि राजस्थान सरकार ने जयपुर साहित्योत्सव के तमाशे

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
को दस लाख रुपए क्यों दिये जबकि इस तमाशे का सम्बन्ध न आम लेखक से था और न ही आम आदमी से। वैसे मुझे लगता है कि सरकार अकादमियों का विकल्प खोज रही है–उसने जिला कलेक्टरों को सांस्कृतिक आयोजनों के लिए अधिकृत कर ही दिया है। सरकार यह जानती है कि अधिकतर लेखक तो उसका विरोध ही करेंगे। यदि नियुक्ति नहीं की जाए, तो वे लालच में चुप पड़े रहेंगे। यह राजनीतिक चाल है जिसे हम समझकर भी नहीं समझ रहे हैं। मैं तो आश्वस्त हूँ कि लेखक समुदाय किसी न किसी प्रकार लाभ के लिए अपनी गतिविधियों को नियोजित करता रहता है। पुरस्कारों के लिए हम जो जोड़-तोड़ करते हैं, वह बिल्कुल राजनेताओं जैसी होती है।

- **जैसे?**
- उदाहरण एक नहीं कितने ही दे सकता हूँ। आप पिछले दिनों हुए 'छिनाल' विवाद को तो नहीं भूले होंगे। क्या हुआ? लेखकों ने खूब हल्ला मचा लिया। विभूतिनारायण राय और रवीन्द्र कालिया के खिलाफ। क्या बिगाड़ लिया इन इन लोगों का? बिगड़ता तो तब जब लेखक अपनी रीढ़ का परिचय देते–सिब्बल ने धमकाया और विभूति बाबू ने क्षमा याचना कर ली। वे जानते थे कि किसी लेखक ने उन्हें कुलपति नहीं बनाया। उनकी नकेल तो राजनेताओं के हाथों में है। इसलिए वे लेखकों की परवाह भी क्यों करें? कालिया तो एक निजी संस्थान के सेवक हैं तथा उनका काम है संस्थान को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाना और वे यह काम बखूबी कर रहे हैं। राजनीति में हम देख रहे हैं कि किसी भ्रष्ट नेता का आज तक कुछ नहीं बिगड़ा, तो विभूति बाबू का कैसे बिगड़ता? और लेखकों में उनकी लॉबी भी है। खुद राजेन्द्र यादव ने उनसे सहमति व्यक्त की। यह बात अलग है कि उन्होंने अपनी सहमति को एक दार्शनिक आधार प्रदान कर दिया। एक ओर वे स्त्री विमर्श की अगुवाई करते हैं, तो दूसरी ओर महिलाओं को अपमानित होने देते हैं। इतना ही नहीं वे मानते हैं कि स्त्री के लिए 'छिनाल' जैसे शब्द का प्रयोग तो स्त्री शक्ति का परिचायक है।
- **इस प्रसंग में राजेन्द्र यादव के स्टैण्ड को आप किस तरह व्याख्यायित करते हैं?**
- राजेन्द्र यादव हिन्दी के उन विरले लेखकों में से हैं जिनका अध्ययन बहुत विपुल है तथा उनका चिन्तन भी बहुत गंभीर है और उन्होंने कथा साहित्य के अतिरिक्त कथा आलोचना के क्षेत्र में जो कार्य किया है, वह बहुत महत्वपूर्ण है, किन्तु राजेन्द्र यादव की दिक्कत यह है कि वे गंभीर बातों के कारण चर्चा में रहना नहीं चाहते बल्कि हल्की बातों को लेकर चर्चा में बने रहने का प्रयास करते हैं। उन्होंने प्रयास यही किया कि वे 'हंस' को अपने नेतृत्व के लिए इस्तेमाल करें और उन्होंने स्त्री विमर्श और दलित विमर्श के झण्डे बुलन्द किए। उन्होंने दलितों और स्त्रियों को पूरे समाज से अलग करके

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Sarai Memorial Collection, Delhi. Digitized by Sarai Media Lab

देखा। उसका नतीजा यह हुआ कि दलित विमर्श उनकी साहित्यिक राजनीति का हिस्सा बन गया और स्त्री विमर्श उनका व्यक्तिगत मसला। कहने वाले तो यह भी कहते हैं कि उन्होंने अपने और मन्नू भण्डारी के बीच सम्बन्धों और मतभेदों को भुनाने का प्रयास किया पर इस पर शोध होना बहुत जरूरी है कि उन्होंने और मन्नू भण्डारी ने एक-दूसरे पर जो सार्वजनिक आरोप लगाए उनके पीछे कौनसी राजनीति थी। भारत ही नहीं संसार में कितने पति-पत्नियों के बीच मतभेद होते हैं, पर शायद ही कोई सार्वजनिक उत्सव का आलम्बन बनाता हो। इस सबसे जो नुकसान हुआ वह यह कि राजेन्द्र यादव का रचना कर्म कहीं पीछे छूट गया और लोगों ने भी उन्हें एन्ज्वॉय ही अधिक किया। उन्होंने कथा आलोचना में जो काम किया है, उसका नोटिस ही लोग नहीं लेते। यह भी हिन्दी में अजीब परम्परा है कि जब भी कहानी आलोचना की बात करेंगे नामवर सिंह की 'कहानी : नई कहानी' केन्द्र में रहेगी जबकि इस पुस्तक में जो टिप्पणियाँ हैं, वे एक वक्त में हो रहे बदलावों को रेखांकित भर करती हैं। कोई गम्भीर विमर्श पैदा नहीं करतीं। नतीजा यह होता है कि न कोई राजेन्द्र यादव का नाम लेता है और न सुरेन्द्र चौधरी का। कभी-कभार देवीशंकर अवस्थी का नाम जरूर ले लिया जाता है। एक अजीब-सी स्थिति है कि हिन्दी आलोचना में नामवर जी एक ऐसी रूढ़ि बन गए हैं जिससे टकराए बिना कोई आगे नहीं बढ़ सकता या उनसे प्रमाण-पत्र लिए बिना कोई लेखक प्रतिष्ठित नहीं हो सकता जबकि सच यह है कि नामवर जी ने जब भी कुछ कहा है अपने आपको बड़ा बनाने के लिए कहा है और वे अपने-आपको ही स्थापित करने का निरन्तर प्रयास करते रहे हैं। आगे जब उनका निरपेक्ष मूल्यांकन होगा, तो पता चल जाएगा कि वे अपने स्थापन-प्रयासों को ही संघर्ष का नाम देते रहे और बहस के केन्द्र में हमेशा बने रहे। उन्होंने जो भी किया अपने निमित्त किया और उन्होंने प्रयास यही किया कि हिन्दी का हर विमर्श नामवर विमर्श हो। मैं तो यह भी मानता हूँ कि नामवर जी की पीढ़ी के लोगों ने अनेक स्तरों पर अपनी स्वार्थपरता का परिचय दिया है और उन लोगों ने कभी दृढ़ स्टैंड नहीं लिया है। आप अखबारों को उठाकर देख लें-हर मसले पर वही चार-पाँच लोग अपनी राय दे रहे हैं। वे ही विभिन्न समितियों में मनोनीत हो रहे हैं। वही पुरस्कारों की चयन समितियों में हैं और वे ही विभिन्न विश्वविद्यालयोंमें होने वाली नियुक्तियों में हैं। क्या हमारा हिन्दी समाज इतना छोटा और दरिद्र है कि केवल चार-पाँच लोग हर जगह विद्यमान हैं और इनकी शराफत देखिए कि कभी मना नहीं करेंगे, कभी नहीं कहेंगे कि उन्होंने बहुत कर लिया अब और लोगों को अवसर दें। अगर उन्हें कोई ऐसा काम दिया जाए जिसमें आर्थिक लाभ नहीं हो, तो उनको अनेक बीमारियाँ हो जाएँगी। बिना किसी लाभ के वे जरा भी नहीं खिसकेंगे, पर लाभ की हर जगह वे ही मिलेंगे। वे हमेशा लाभ की राजनीति करते हैं। इसलिए वे बड़े भी हैं और सबके लिए जरूरी भी हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

- **इस वर्ष शताब्दियाँ मनाने की धूम है। जो समारोह हो रहे हैं, उन पर आपकी क्या राय है?**
- देखिए, हिन्दी में शताब्दी वर्ष पहली बार तो नहीं मनाया जा रहा है। यह एक अच्छी परम्परा है कि हम अपने पुरोधाओं को याद करें। उनके कृतित्व का नए सिरे से मूल्यांकन करें और उनके अज्ञात रचनाकर्म को प्रकाश में लाएँ, पर जितना शोर इस बार हुआ है इतना पहले कभी नहीं हुआ। मुझे तो यह लगता है कि हिन्दी में पनपे अंग्रेजी मध्यवर्ग की आकांक्षा थी कि अज्ञेय की दुंदभि बजे और उन्होंने इसमें सफलता हासिल कर ली। अज्ञेय की महानता पर किसे आपत्ति है पर अजीब तरह का शोर मचा कि अज्ञेय मुक्तिबोध से भी बड़े थे। अब अज्ञेय की महानता में मुक्तिबोध ने कहाँ बाधा डाली। यह बात वे लोग कह रहे हैं जो यह मानते हैं कि मुक्तिबोध को उन्होंने स्थापित किया। उनसे पूछे कोई आप अज्ञेय पर बात कीजिए। पर नहीं यहाँ तो बात या तो मुक्तिबोध के संदर्भ में होगी या अज्ञेय के गैर साहित्यिक क्रियाकलापों की और सबसे अधिक चिन्ता की बात तो यह है कि हम अज्ञेय और यशपाल को अंग्रेजों का जासूस सिद्ध करने में लगे हैं।

  आखिर जो लोग इस बात में उलझे हैं वे अपने रचनाकार को गौरव दे रहे हैं या उसकी निन्दा कर रहे हैं? होना तो यह चाहिए था कि अज्ञेय की रचनाओं पर विस्तृत और गंभीर चर्चा होती–अगर होने वाली चर्चाओं की समीक्षा करें, तो हम पाएँगे कि लोग या तो अज्ञेय के कवि कर्म पर बात कर रहे हैं या उनके एक उपन्यास 'शेखर: एक जीवनी पर।' कोई समय था जब शोधार्थियों की कतार 'अपने-अपने अजनबी' और अस्तित्ववाद को लेकर उद्वेलित थी, पर आज उस उपन्यास का कोई नाम नहीं ले रहा है। 'नदी के द्वीप' की कोई बात ही नहीं कर रहा है। इतना ही नहीं आत्मनेपद, त्रिशंकु, भवंती, लिखि कागद कारे, अंतरा जैसी रचनाओं की कोई चर्चा ही नहीं कर रहा है जबकि अज्ञेय की रचना प्रक्रिया, उनकी भाषा भंगिमाओं की क्षमता, उनके गद्य का लालित्य तथा साहित्य विषयक समझ को विकसित करने की दृष्टि से ये कृतियाँ बहुत महत्वपूर्ण हैं, पर हम चर्चा कर रहे हैं कि उनके जासूस कर्म की और उन्हें राष्ट्रद्रोही सिद्ध करने को कटिबद्ध हैं, तो दूसरी ओर अज्ञेय की दुंदभि बजाने वाले उनकी महानता के ऐसे आयाम प्रस्तुत कर रहे हैं जिनका उनकी रचनाशीलता से कोई सम्बन्ध नहीं है। नतीजा सामने है कि सारी बहसें अज्ञेय में सिमट गई हैं या फिर थोड़ी चर्चा शमशेर की हो रही है। नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल लगभग हाशिए पर डाल दिए गए हैं। हमें यह सोचना चाहिए कि हमारा शताब्दी कार्यक्रम क्या केवल अपनी ध्यानमूर्ति के गुणगान के लिए ही हैं और यह गुणगान भी बहुत वस्तुनिष्ठ न होकर व्यक्ति केन्द्रित है।

CC-0 Anusandhan Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जैसे कि मैंने कहा कि हम यह सिद्ध करने में लगे हैं कि अज्ञेय ने जासूसी की या यशपाल ने। न हम अज्ञेय के कृतित्व पर बात कर रहे हैं और न ही यशपाल के। इसका कारण यह भी हो सकता है कि रचनाओं पर बात करने के लिए हमें पढ़ना पड़ेगा। इसलिए उन विषयों पर काम करना आसान है जिनसे सनसनी पैदा हो सकती है। इससे अगर इन कवियों का कद छोटा होता है, तो हो। हम तो आसान रास्ते अपनाएँगे। मैं यह नहीं कहता कि इन मुद्दों का कोई महत्व नहीं है किन्तु रचनाशीलता के स्थान पर इन मुद्दों पर बात करने का मतलब है कि अपने लिए एक आसान रास्ता चुनना और पाठकों को एक व्यर्थ की बहस में उलझाए रखना। हिन्दी का जो अंग्रेजी मध्यवर्ग अज्ञेय की दुंदभि बजा रहा है उसकी मंशा साहित्य के उस देशीपन से ध्यान हटाने की है जो किसी कवि को भारतीय देशजता का कवि बनाती है। सवाल अज्ञेय की महानता का उतना नहीं जितना उनके इन प्रशंसकों की मंशाओं का है। वे चाहते हैं कि हिन्दी का अभिजात्य काव्य, जिसके प्रतिनिधि अज्ञेय हैं, हिन्दी कविता की मुख्यधारा रहे जिससे नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल जैसे देशज कवि हाशिये पर पड़े रहें और वे हिन्दी की मुख्यधारा की कविता के प्रतिनिधि नहीं बनें। अब विचित्र बात यह है कि अज्ञेय के इन प्रशंसकों में परिमल से सम्बद्ध रहे लोहियावादी हैं और वामपंथी भी। इस गठजोड़ के कुछ तो अर्थ होंगे ही। मेरी अपनी मान्यता है कि अज्ञेय निश्चय ही एक महान रचनाकार हैं पर जिस तरह उनकी प्रशंसा की जा रही है उसके पीछे काम कर रही ताकतों को समझने की जरूरत है। यह आकस्मिक नहीं है कि अज्ञेय प्रसंग में अशोक वाजपेयी, नामवरसिंह, मैनेजर पाण्डेय, विश्वनाथ त्रिपाठी, रमेश चन्द्र शाह आदि के स्वरों में बहुत अन्तर नहीं रह गया है। इसे ही कहते हैं 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया' किन्तु इस निर्मलता में क्या-क्या अन्तर्भुक्त हो चुका है उसे जानने की जरूरत है।

- **चलिए, यह सब तो ठीक है। दलित विमर्श पर और दलित लेखन पर आप अपनी राय किस तरह रखेंगे?**
- देखिए दलित विमर्श जिस तरह की बहसों में उलझा हुआ है, उनसे उसका कोई भला नहीं होने वाला है। पहले आप यह तो तय करें कि आप दलित वर्ग की बेहतरी के लिए संघर्ष कर रहे हैं या अपने लेखन की प्रतिष्ठा को कायम करने के लिए। प्रतिष्ठा क्या ब्राह्मणवाद या ब्राह्मणों की निन्दा से ही मिल सकती है? क्या यह जरूरी है कि जब तक हम प्रेमचंद को दलित विरोधी सिद्ध नहीं करेंगे तब तक दलित साहित्य का भला नहीं होगा? प्रेमचंद की रचनाओं की व्याख्या जिस तरह दलित चिन्तक कर रहे हैं उस तरह तो विश्व की श्रेष्ठतम रचनाओं को निरस्त किया जा सकता है। फिर आप यह भी देखें कि दलित लेखक परस्पर कितने एकमत हैं? उनके अपने अन्तर्विरोध अधिक हैं कि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
यह तय करना ही कठिन हो जाता है कि कौन अधिक सही है? अब धर्मवीर को ही लें–दलित लेखकों का एक वर्ग उन्हें श्रेष्ठ मानता है पर उनके दुराग्रह इतने तीव्र हैं कि वे स्वयं यह नहीं बता सकते कि वे किस तरह का समाज बनाना चाहते हैं? मैं आपसे कहता हूँ कि कबीर पर धर्मवीर ने कई पुस्तकें लिखी हैं। उन पर बहसें भी हुई हैं पर यह तो हमें जानने का हक है कि कबीर के बारे में उनकी अपनी स्थापनाएँ क्या हैं? उनकी किताबों को पढ़ने पर एक आम पाठक की कबीर विषयक समझ में कितना बदलाव होता है? जब तक आप ध्वंस ही करते रहेंगे तब तक आप निरर्थक प्रयास करते रहेंगे। असल बात यह है कि आप विकल्प क्या देते हैं? चलो मान लिया कि सारे ब्राह्मणवादी आलोचकों ने कबीर के साथ अन्याय किया पर आपने कबीर की व्याख्या किस तरह की और उनके विषय में आपने क्या नई स्थापनाएँ दीं यह भी तो स्पष्ट होना ही चाहिए। मैं एक बात और कहना चाहता हूँ और यह बात मैंने राजेन्द्र यादव से कई बार कही है कि आप आजादी मिलने के बाद आए भारतीय समाज के बदलावों को रेखांकित क्यों नहीं कर रहे? आपके चिन्तन की सुई अभी भी पाँच हजार वर्ष पहले पर अटकी हुई है। आपको आज भी लगता है कि हमारा समाज मनुस्मृति के अनुसार चल रहा है जबकि हम कभी का उस किताब को अपने जीवन से निकाल चुके हैं। हमारी चिन्ता यह क्यों नहीं है कि चाहे सवर्ण हो चाहे दलित सत्ता पर काबिज वर्ग सबसे अधिक रूढ़िवादी है। कभी यह भी तो कहिए कि दलितों को जब भी अधिकार मिले हैं, तब उनका उपयोग करते हुए उन्होंने भी करिश्मे किए हैं और नहीं तो कम से कम भ्रष्टाचार के क्षेत्र में तो वे बराबरी कर ही रहे हैं। पर यहाँ भी वे पूरी चालाकी के साथ काम लेते हैं–जब कोई दलित वर्ग का व्यक्ति भ्रष्टाचार करते उजागर होता है, तो वह यही बहाना क्यों लेता है कि वह दलित है। इसलिए उसके खिलाफ षड्यंत्र किया जा रहा है। उनके वर्ग में भी एक अलग तरह का बाह्मणवाद विकसित हो रहा है और यह वर्ग भी उन्हीं अन्तर्विरोधों का शिकार हो रहा है जिनका आरोप वह सवर्ण वर्ग पर लगाता रहता है। यह दलितों को देखना है कि वे आगे जा रहे हैं या पीछे। प्रेमचन्द को निरस्त करके ही हम क्यों स्थापित होना चाहते हैं? यह काम प्रेमचंद से बेहतर लिखकर हो सकता है। दलित आत्मकथाओं की बहुत बात होती है पर उनमें इतना एकरसपन क्यों है? फिर आप धर्मवीर की आत्मकथा 'मेरी पत्नी और भेड़िया' पर बात क्यों नहीं करते? क्या इससे खराब और अमानवीय रचना हो सकती है? आप इस पर गर्व कर रहे हैं?

तुलसीराम की 'मुर्दहिया' आत्मकथा पाठकों को क्यों अच्छी लग रही है? हमें यह सोचना चाहिए कि अपने अतीत से बदला लेकर हम क्या आगे बढ़ सकते हैं? क्या

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
निरन्तर एक ही लकीर को पीटकर हम कुछ नया हासिल कर सकते हैं? यदि रचनाकर्म एक साधना है, तो उसके लिए अतीत को कोसते रहने से कुछ नहीं होने वाला है। जब तक हम अपने ही अन्तर्विरोधों को समझकर अपने प्रति ही निर्मम नहीं होंगे, तब तक किसी नई रचना की उम्मीद नहीं कर सकते। जब तक हम अपनी हर चीज पर संदेह करते रहेंगे तब तक कुछ भी नया नहीं रच पाएँगे। मुझे सुनकर आश्चर्य होता है कि जब हमारे मित्र अपनी रचनाओं का एजेण्डा इस तरह रखते हैं जैसे वे रचनाकर्म की रैसिपी बता रहे हों। समाज कभी भी इतना इकहरा और एकरेखीय नहीं रहा जैसा वे मानकर चलते हैं। हर युग में समाज की वे शक्तियाँ सक्रिय हुई हैं जिन्होंने जीवन की गति को रोकने वाली ताकतों का पुरजोर विरोध किया है। इसलिए समाज को हमें एक समग्र इकाई के रूप में समझने का प्रयास करना चाहिए। साहित्य का तो काम ही मानवीय मूल्यों की रक्षा और प्रतिष्ठा करना है। जब हम मानते हैं कि रचनाकार प्रतिपक्ष की भूमिका निभाता है, तो दिक्कत कहां है? आप भी वही कीजिए, वही मानव मुक्ति का मार्ग है। आप भी उस पर अपनी पूरी ऊर्जा के साथ चलिए। अपना भी विरोध करना सीखिए और अपनी सीमाओं को भी पहचानने का प्रयत्न कीजिए।

और नारी विमर्श पर?

- हिन्दी में स्त्री विमर्श का जो माहौल बना है वह स्वागत के योग्य है तथा इसमें भी कोई संदेह नहीं कि हमारी पुरुष प्रधान संस्कृति में स्त्रियों को बराबरी का दर्जा नहीं मिला। अपना वाजिब अधिकार पाने के लिए पश्चिम में स्त्री विमर्श का सूत्रपात हुआ। हमारे यहाँ भी स्त्री स्वातन्त्र्य की बात उठी। पर यह बात प्रायः उसके देह स्वातन्त्र्य की ही हिमायत करती रही। अगर बहुत गहराई से देखें, तो हमारे स्त्री विमर्श में निराला की पत्थर तोड़ने वाली स्त्री कहीं नहीं थी। मजूरी करके अपना और अपने बच्चों का पेट पालने वाली औरत नहीं थी। वहाँ थी उच्च मध्यवर्ग की वह नारी जो किसी ऑफिस में नौकरी करती थी, वह विवाहेत्तर सम्बन्धों में विश्वास करती थी। वह अपने पति के समक्ष मुखर विरोध कर अपना अस्तित्व सिद्ध कर सकती थी और उसके लिए देह स्वातन्त्र्य का अर्थ यौन सन्तुष्टि थी। उसके लिए यौन शुचिता का कोई अर्थ नहीं तथा देह की माँग ही उसकी प्रथम और अन्तिम माँग थी। जब तक कोई विमर्श पूरे समाज के साथ सम्बन्ध नहीं रखता तब तक उसका प्रभाव भी अधिक नहीं हो पाता। हमने अपने स्त्री विमर्श का हश्र छिनाल काण्ड में देख लिया। न समूचा लेखक समुदाय उसके विरोध में एक हो पाया और न ही लेखिकाएँ ही पूरे जोश के साथ एकजुट हो पायीं। इसका कारण यह रहा कि कहीं न कहीं हमारे व्यक्तिगत हित भी इस काण्ड से जुड़ गए थे। इसलिए जो भी मुखर विरोध हुआ, उसका कोई नतीजा नहीं निकला। पर कितने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ऐसे लेखक/लेखिकाएँ सामने आ पाए जिन्होंने म गां अं वि वि वर्धा से तथा 'नया ज्ञानोदय' से अपने सम्पर्क काटे हों? जैसे सब यथावत हो गया। इसका कारण यह भी रहा कि हमने मुद्दे को गलत सिरे से पकड़ा। खैर, इस मामले में अधिक कहना ठीक नहीं, क्योंकि मामला तो अपने आप ही ठण्डा पड़ चुका है। उनके दिन भी वैसे ही फिर गए हैं जैसे औरों के।

- **लेखक और नैतिकता का आप क्या सम्बन्ध मानते हैं? क्या लेखक को नैतिकता का निर्वाह करना चाहिए?**
- देखिए, लेखक समाज से अलग नागरिक नहीं है कि उसे किसी अलग प्रकार की नैतिकता निभाने की जरूरत न हो। इस दृष्टि से देखें, तो मुझे अशोक वाजपेयी का आचरण आकर्षित करता है। वे अज्ञेय भक्त हैं और अज्ञेय शताब्दी मनाने में वे महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, किन्तु उन्होंने ईमानदारी से यह तो स्वीकार किया कि कभी अज्ञेय की तीखी आलोचना कर उन्होंने भूल की थी। साथ ही उन्होंने उत्तरप्रदेश संस्थान का सर्वोच्च पुरस्कार न केवल अस्वीकार किया बल्कि उत्तरप्रदेश शासन को उसकी संवेदनहीनता के लिए लताड़ा भी। उन्होंने हिन्दी लेखकों से अपील भी की कि वे इस प्रकार की अपमानजनक स्थितियों का विरोध करें और इन व्यावसायिक पुरस्कारों की निन्दा करें। पहले भी तो उन्होंने भाजपा का विरोध कर अपना नैतिक स्टैण्ड लिया था, पर हमारे प्रात:स्मरणीय तो इन्तजार करते रहते हैं कि पुरस्कार मिले तो सही, अध्यक्षता मिले तो सही, किसी समिति की सदस्यता मिले तो सही, वे कभी मना नहीं करेंगे। इस दृष्टि से देखें, तो हिन्दी समुदाय में रामविलास शर्मा का कोई मुकाबला नहीं है। लेखन और व्यक्तिगत आचरण दोनों स्तरों पर उन्होंने एक अलग तरह के व्यक्तित्व का परिचय दिया है। उनकी जैसी दृढ़ता और वैदुष्य आज किसी में दिखाई नहीं दे रहा। यहाँ तो कभी उन्हें 'जलती मशाल' कहा जाता है तो कभी उनकी 'शव साधना' पर टिप्पणी की जाती है। इतना ही नहीं यहाँ तो ऐसे विद्वान हैं, जो कभी रामविलास जी के लिए अपशब्दों का प्रयोग करते थे और उनकी हर बात की निन्दा करते थे। आज वही उनकी प्रशस्ति में पता नहीं उन्हें क्यों युगपुरुष के रूप में स्थापित कर रहे हैं। उनकी कौनसी बात को सही माना जाए? सच तो यह है कि उनके पास रामविलास जी के लिए अपशब्दों के प्रयाग के पीछे भी कुछ व्यक्तिगत आग्रह थे और अब उनकी प्रशस्ति करने के पीछे भी व्यक्तिगत कारण हैं। क्यों है इतना डरपोक हमारा लेखक? क्यों वह छोटे-छोटे स्थानीय और व्यक्तिगत दबावों के कारण अपना स्टैण्ड बदलता रहता है? क्या उन्हें अपने आप पर कभी शर्म नहीं आती। जब नैतिकता की बात होगी तो वे अपने आपको संसार का सर्वश्रेष्ठ ईमानदार व्यक्ति साबित कर देंगे और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
वक्त पड़ने पर अपने विश्वविद्यालय के विभाग के गलत निर्णयों तक का विरोध करने का साहस भी नहीं जुटा पाएँगे। मैंने तो यह देखा है कि हिन्दी लेखकों में ऐसे लेखक हैं जो अपना आतंक बिना किसी अकादमिक योग्यता के जमाए रहते हैं और कायर लेखक समुदाय उनके खिलाफ एक शब्द भी नहीं कह पाता। इसके लिए उनके कॅरियर बनाने की आकांक्षा जिम्मेदार है। अव्वल तो हम कोई जोखिम उठाते ही नहीं और अगर उठाया भी तो यह देखकर उठाएँगे कि उससे उन्हें कितना लाभ होने वाला है? इसके अनेक प्रमाण आपको पुस्तकों के रूप में मिल जाएँगे।

- **इसी संदर्भ में आप अपने-आपको कितना नैतिक मानते हैं?**
- मैं कभी यह दावा नहीं करता कि मैं कोई आदर्श व्यक्ति हूँ, किन्तु इतना जरूर कह सकता हूँ कि मैंने व्यक्तिगत लाभ के लिए कोई समझौता नहीं किया। सरकारी नौकरी में रहते हुए सरकार के गलत निर्णयों का विरोध किया। आपातकाल में वरिष्ठ कवि ऋतुराज के साथ मैंने आपातकाल का विरोध किया। राजगढ़ (अलवर) जैसे पिछड़े कस्बे में विरोध की लहर को सक्रिय किया। हमने वहाँ 'मुक्तिबोध साहित्य समिति' नामक संस्था का गठन किया और उसके मंच में अनेक कार्यक्रमों द्वारा आपातकाल का विरोध किया। पुलिस का मुकाबला भी किया। हमारे मित्रों ने मुक्तिबोध का अर्थ लगाया आपातकाल से मुक्ति का बोध। इसकी उपलब्धि यही रही कि उस क्षेत्र के आम आदमी की जुबान पर मुक्तिबोध का नाम चढ़ गया और वे मानने लगे कि मुक्तिबोध सरकार के विरोध का प्रतीक है। अब प्रियंवद यह कहते हैं कि आपातकाल में कोई लेखक अपने रचनाकर्म के कारण जेल नहीं गया। सवाल यह नहीं है कि कोई जेल गया या नहीं गया। असल बात तो यह है कि हमारे लेखक अपनी-अपनी तरह से आपातकाल का विरोध कर रहे थे और उस विरोध को सरकार पूरी तरह समझ रही थी।
- **इससे क्या आपको कोई व्यक्तिगत हानि हुई?**
- मेरा व्यक्तिगत नुकसान कुछ नहीं हुआ। बस इतना हुआ कि मुझे और ऋतुराज जी को राजगढ़ से दूर-दूर भेज दिया गया बल्कि मुझे तो यह भी अहसास हुआ कि जो तंत्र आपातकाल की रक्षा कर रहा था वही उसका विरोध करने वालों की रक्षा भी कर रहा था, लेकन अब जो तंत्र है वह उससे भी खराब है और सरकारें किसी तरह मूल्यों की रक्षा नहीं कर पा रही है।
- **हमारे लेखकों में और कौनसी संकीर्णता है?**
- हो सकता है आपको मेरी बात सही नहीं लगे पर अगर आप खोजोगे, तो आपको जातिवाद के सूत्र भी लेखकों में मिल जाएँगे। खाल उधेड़कर देखोगे, तो पाओगे कि यहाँ सिंहवाद है, तिवारीवाद है, त्रिपाठीवाद है, कायस्थवाद है और इतना ही नहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
दलितों के बीच अपना जातिवाद है। हम तो मनुष्यता की बात करते हैं फिर यह संकीर्णता क्यों? बताओ फिर राजनेताओं में और हममें क्या अन्तर है? हम अपने आत्मस्वीकारों में भी झूठ बोल जाते हैं। हुआ यह कि हमने अपने-अपने लेखक चुन लिए और उन्हीं का यशगान करने में लगे रहे। इसमें कुछ भी बुरा नहीं है, पर जिसे हम चाहते हैं, उसके सामने औरों को छोटा बनाने की कोशिश को और क्या कहेंगे?

- **आपने साहित्य जीवन और व्यक्तिगत जीवन के बीच कैसे सन्तुलन बनाया?**
- जानता हूँ इस साक्षात्कार से लोग नाराज ही होंगे। मैं कोई साधु-संत नहीं हूँ। मुझमें सारी मानवोचित कमजोरियां हैं पर मैंने कभी अपने लिए किसी का उपयोग नहीं किया। आप जानते हैं कि राजस्थान के मंत्रिमंडल में ऐसे व्यक्ति हैं जिनमें मेरे बहुत आत्मीय और पारिवारिक सम्बन्ध हैं पर मैने अपने लिए उनका कभी उपयोग नहीं किया। मेरे लिए यही काफी है कि वे मंत्री होते हुए भी मेरे-अपने सम्बन्धों का पूरा सम्मान करते हैं। मैं यह नहीं कहता कि मैंने कोई बड़ा संघर्ष किया है पर अपने आपको स्थापित करने के लिए श्रम तो किया ही है। राजस्थान में मैं 1957 में आया था। एक साधारण शिक्षक के रूप में। उसके बाद मैं यहीं का बनकर रहा हूँ। यद्यपि मेरा मेरे जन्म स्थान, रामनेर, उत्तरप्रदेश से सम्पर्क अब भी नहीं छूटा है और मैं बराबर वहाँ जाता रहता हूँ। मेरा वहां अपना कुछ नहीं है सिवाय दिवंगत छोटे भाई के परिवार के। उसी के कारण मुझे वहां जाना पड़ता है। वहां मेरी पीढ़ी के बहुत कम लोग बचे हैं। वहाँ बहुत अच्छा लगता है। पर उत्तर प्रदेश का निवासी बनकर कभी लाभ लेने की कोशिश मैंने नहीं की। मैंने यही माना कि मैं तो राजस्थान का ही हूँ और यहाँ की मिट्टी का ही मेरे ऊपर ऋण है। जो लिखा उसके बारे में कोई भ्रम मुझे नहीं है। यह जरूर है कि मैंने कोई शार्टकट नहीं अपनाया, किसी से अपनी किसी किताब की भूमिका भी नहीं लिखवायी, किसी किताब का विमोचन नहीं कराया, किसी से अपनी पुस्तक की समीक्षा लिखने तक के लिए नहीं कहा। हाँ, मैंने कुछ काम अपनी जिद के कारण किए हैं-जैसे प्रलेस का अध्यक्ष मैं अपनी क्षुद्र आकांक्षा के कारण बना। इसके लिए मैं शर्मिन्दा भी हूँ। ऐसी ही जिद मैंने 1975 में राजस्थान विश्वविद्यालय की हिन्दी पाठ्यक्रम समिति का चुनाव लड़ने की करी थी मैं जीता और तब से लगभग सदा उस समिति में रहा हूँ। उसमें रहते मुझे आरोपों की ध्वनि भी सुननी पड़ी। पर मैंने देखा कि मुझ से पहले जो लोग उस समिति में रहते आए थे, उन पर भी वैसे ही आरोप थे। वे बड़े लोग थे। मैं छोटा पर मुझे लगता है कि आदमी की नैतिक ताकत ही उसे बड़ा या छोटा बनाती है। मैंने ऐसा भी वक्त देखा कि मैं जिस कॉलेज में काम कर रहा हूँ उसके प्रिंसिपल के साथ सभी साथी मेरे खिलाफ हैं। थाने तक में रिपोर्ट करने का प्रयास हुआ। उच्च अधिकारियों से

CC-0. Panjab University Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
शिकायतें हुईं। पर मैं सबकुछ अविचलित होकर सह गया क्योंकि मुझे पता था कि नैतिक रूप से मैं गलत नहीं था। इसलिए मेरा कोई नुकसान नहीं हो पाया। मैंने किसी के प्रति कल्मष भी नहीं पाला। मतभेद हुआ तो अपना मार्ग अलग कर लिया। जब विरोध करने का मौका आया तो मैंने विरोध करने में कोई संकोच नहीं किया। मुझे सेवानिवृत्त हुए 16 साल हो चुके हैं पर अभी शिक्षा के क्षेत्र से अनौपचारिक रूप से जुड़ा हूँ। इसलिए लोगों का प्रेम मुझे खूब मिलता है। यह मेरे लिए संतोष की बात है।

- **राजस्थान में साहित्कारों के बीच जो सम्बन्ध हैं उसके बारे में आप क्या सोचते हैं? विशेष रूप से राजस्थान की रचनात्मकता के बारे में।**
- राजस्थान में रचनात्मकता की कोई कमी नहीं है। पर हम लोगों के बीच उस तरह का एका नहीं है कि हम परस्पर सहयोग करें और अपने मित्रों के रचनाकर्म को रेखांकित करें। हमारे बीच ऐसे भी रचनाकार हैं जो सोचते हैं कि अगर उन्होंने किसी राजस्थान के लेखक की तारीफ कर दी तो उन्हें छोटा मान लिया जाएगा। जिनकी निगाह दिल्ली पर रहती है वे हीनभावना से ग्रसित रहते हैं। हमारी इस प्रवृत्ति का नुकसान यह हुआ है कि राजस्थान के रचनाकर्म को वाजिब स्थान नहीं मिला है। कौन नाम लेता है रामकृष्ण शिलीमुख, फैयाज़ अली, देवराज उपाध्याय, नवलकिशोर जैसे आलोचकों का। जब-जब भी हिन्दी आलोचना पर बहस होती है, देवराज उपाध्याय को कोई कोट नहीं करता जबकि वे अपने समय के अग्रिम पंक्ति के आलोचक थे। मनोवैज्ञानिक आलोचना स्कूल के वे आज भी सबसे प्रखर आलोचक हैं। यदि हम मुनिजिन विजय के सारे कृतित्व का मूल्यांकन करें तो हम पाएगे कि वे आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, वासुदेवशरण अग्रवाल, राहुल सांकृत्यायन की कोटि में आते हैं। पर राजस्थान के लेखक ही उनके कृतित्व से पूरी तरह परिचित नहीं हैं। बहुत कम लोग जानते हैं कि राजस्थान के मुख्यमंत्री मोहनलाल सुखाड़िया ने मुनिजिन विजय की मेधा और उनके वैदुष्य के उपयोग के लिए राजस्थान में प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान् जोधपुर की स्थापना की थी। आज उस संस्था की क्या हालत है। इसका मूल्यांकन होना चाहिए। वर्तमान मुख्यमंत्री तो अपने शासन आने के लगभग तीन साल बाद भी अकादमियों के अध्यक्षों की नियुक्ति नहीं कर पाए हैं। उनके पास जयपुर फेस्टीवल के तमाशे के लिए तो दस लाख रुपए हैं जबकि उस तमाशे की कोई वैचारिक उपलब्धि नहीं है। अब सरकार जिला कलेक्टरों को सांस्कृतिक आयोजनों के अधिकार दे रही है। जैसे कलेक्टरों के पास पहले बहुत कम काम है। इस तरह सरकार साहित्यिक और सांस्कृतिक मुद्दों पर निष्क्रय रहना ही पसन्द करती है।
- **हमारे यहाँ लेखक संगठनों की क्या स्थिति है?**

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

- लेखक संगठनों तथा लेखक समूहों के पास सरकार को चेताने की ताकत नहीं है। इसका कारण यह है कि हम कहीं न कहीं सरकार से प्रसाद पाने की कामना रखते हैं। मैं 'अक्सर' में सरकारी नीतियों की आलोचना छाप रहा हूँ। लोग तो इतना भी नहीं कर रहे। हो सकता है राजस्थानी संस्कृति का प्रभाव हो कि हम सामंती मानसिकता से मुक्त नहीं हो पाए। किसी अकादमी की अध्यक्षता इतनी बड़ी नहीं है कि हम उसके लिए अपने मूल चरित्र को भुला दें। इसलिए हम पिछड़े हुए हैं। लहर, बिन्दु, वातायन, अभिव्यक्ति, शेष, संबोधन, समय माजरा, अक्सर आदि पत्रिकाओं ने जो काम किया है उसे यों ही नहीं भुलाया जा सकता। 'एक और अंतरीय' को तो एक संगठन ने ही डुबाया। वह फिर निकलने की प्रक्रिया में है। हाल ही में 'कुरजां' का भव्य और विराट अंक निकला है जो उन रचनाकारों पर केन्द्रित है जिनकी 2011 में जन्मशताब्दी है। इसमें अनेक भाषाओं की प्रतिभाओं पर साम्रगी है जिनकी इस वर्ष जन्म शताब्दी है।
- **आप जीवनभर शिक्षा से जुड़े रहते हैं। आज भी शिक्षा को लेकर आप चिन्ता जाहिर करते रहते हैं और उसकी विसंगतियों पर बराबर लिखते रहते हैं। उच्च शिक्षा का स्तर गिर रहा है। यह तो सभी कहते हैं पर कोई भी न तो इसके कारणों पर चर्चा करना चाहता है और न इसके सुधार को लेकर बहुत काम हो पा रहा है। आप भारत की उच्च शिक्षा के विषय में क्या सोचते हैं?**
- मेरे सोचने से क्या होता है? असल बात यह है कि भारत की केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारें उच्च शिक्षा के दायित्व से मुक्त होना चाहती हैं और चाहती हैं कि यह निजी हाथों में चली जाए। यह हो भी रहा है कि छोटे-छोटे कस्बों में कई कई कॉलेज खुल गए हैं पर इन पर नियन्त्रण उन मालिकों का है जिनकी रुचि कॉलेजों से पैसा कमाने में है और वे कमा रहे हैं। इन कॉलेजों में बुनियादी सुविधाएँ भी नहीं हैं। पुस्तकालय, प्रयोगशालाएँ और खेल के मैदान और सबसे बड़ी बात कि योग्य शिक्षक नहीं हैं। इसका कारण यह है कि शिक्षकों की नियुक्तियाँ ठेके पर हो रही हैं। जुलाई में एक शिक्षक को रखा जाता है और फरवरी के अन्त में उसे कार्यमुक्त कर दिया जाता है। उसे इन महीनों का भी पूरा वेतन नहीं दिया जाता है। बेरोजगार युवक इन स्थितियों में काम करने और अपना शोषण कराने के लिए मजबूर हैं। आप इनसे क्या उम्मीद कर सकते हैं? जो अनिश्चित अँधेरे में जी रहे हैं उनमें पहले उम्मीद तो जगाइए। उन्हें उनकी नौकरी के प्रति आश्वस्त तो कीजिए। कॉलेजों में बुनियादी सुविधाएँ तो जुटाइए। फिर परिणाम की आशा कीजिए।
- **आप इस स्थिति के लिए किसे जिम्मेदार मानते हैं?**
- उस व्यवस्था को जिसने शिक्षा को व्यवसाय अथवा व्यापार में तब्दील कर दिया है। इन

CC-0. Panjab University Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
निजी संस्थानों पर इनके मालिकों का कब्जा है। वे कर्मचारियों का शोषण करते हैं। उनकी पहुँच ऊपर तक है। इसलिए वे कमियों को दूर करने की जहमत ही नहीं उठाते। मैं राजस्थान के सन्दर्भ में कह रहा हूँ–विश्वविद्यालय का शिक्षक तो अपनी पदोन्नति की चिन्ता में मशगूल है। सरकारी कॉलेज का शिक्षक अपने तबादले को लेकर पूरे समय व्यस्त रहता है और गोटियाँ बिठाता रहता है कि उसका तबादला नहीं होना चाहिए। वह अपना तबादला रुकवाने के लिए कोई भी समझौता करने को तैयार है। कुछ राजनीतिक माहौल ही इतना संकीर्ण हो गया है कि सरकारी कॉलेज का शिक्षक सदा एक भय में जीता है जबकि निजी कॉलेजों में काम करने वाले शिक्षक का शोषण और दोहन हो रहा है। वह बेचारा कुछ भी सहने को विवश है। आप बताइए इसके लिए कौन जिम्मेदार है? क्या वजह है कि शिक्षक संघ बिल्कुल अप्रभावी हो गए हैं, क्योंकि शिक्षकों के कारण ही वे सरकार के अंग बन गए हैं।

- **यह भी तो सच है कि शिक्षक अपना काम निष्ठापूर्वक नहीं करते?**
- यह आप ठीक कह रहे हैं। मैं आज भी अपने को शिक्षक ही मानता हूँ। यह देखकर चिन्ता होती है कि शिक्षक कुछ भी कर लेगा पर पढ़ाएगा नहीं। यह अनैतिक है। कैसा ही बुरा समय आ गया हो, अच्छे शिक्षक की आज भी प्रतिष्ठा है। मुझे तो ऐसा लगता है कि शिक्षण होने के कारण ही मैं जीवन में इतनी प्रतिष्ठा पा सका। असल में निरन्तर शिक्षक और अध्ययन ही शिक्षक की सबसे बड़ी ताकत है। जो शिक्षक निरन्तर अपनी कक्षाएँ ले रहे हैं और अपने विषय का अध्ययन भी कर रहे हैं वे समाज में समादृत हैं। काहिल लोगों को सम्मान मिलना भी नहीं चाहिए। मैंने अपने एक बहुत कठोर माने जाने वाले प्राचार्य से कहा था कि अगर मैं अपनी कक्षाएँ नियमित लेता हूँ और छात्रों को सन्तुष्ट रखता हूँ और आपसे मैं कोई संवाद नहीं करता, तो आप मेरा क्या कर लेंगे। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया पर जब वे दूसरे कॉलेज में चले गए, तो मुझे भाषण देने के लिए बुलाया और मेरा परिचय देते हुए उन्होंने यही कहा कि ये ऐसे शिक्षक हैं, जो अपनी क्षमताओं पर विश्वास करते हैं। नियमित कक्षाएँ लेते हैं और प्राचार्य से सीधे सवाल कर सकते हैं। मैं स्वयं ही कमजोर हूँ, तो मैं किससे आँखें मिला सकता हूँ। मुझे सबसे तकलीफदेह यह लगता है कि शिक्षकों ने पढ़ना–पढ़ाना लगभग त्याग दिया है। पुस्तकों और पत्रिकाओं पर व्यय के लिए उसके पास पैसा नहीं है। पुस्तक संस्कृति से वह दूर चला गया है। उसके पास सब–कुछ है सिवाय पुस्तकों के। अब बताएँ बिना हथियार के कोई कैसे अपना शौर्य प्रकट कर सकता है।
- **इस मामले में तो विश्वविद्यालयों के शिक्षक भी ऐसे ही हैं?**

वे और भी खराब हैं, क्योंकि जो व्यक्ति एक बार किसी विश्वविद्यालय में घुस गया वह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
प्रोफेसर होकर ही निकलेगा। यह कबाड़ा हमारी यूजीसी की नीतियों ने किया है। मैं यह नहीं कहता कि अध्यापक को अच्छा वेतन नहीं मिले। मिले पर पद तो उसकी योग्यता के आधार पर ही मिलना चाहिए। आज विश्वविद्यालयों में प्रोफेसरों की भीड़ है और वे उन्हें सभी आनन्द भोगाने को मिल रहे हैं, जो एक योग्य प्रोफेसर को मिलने चाहिए। मैं हिन्दी की बात कहता हूँ, जो आज प्रोफेसर बने बैठे हैं उनके पास क्या योग्यताएँ हैं सिवाय इसके कि वे विश्वविद्यालय में हैं। नीति यह होनी चाहिए कि वेतन तो समय-सीमा में बढ़ा दिया जाए पर पद तो योग्यता के आधार पर ही मिलना चाहिए। यूजीसी ने अन्त्योदय योजना (कॅरियर एडवान्स स्कीम) के अन्तर्गत प्रोफेसर के पद को बहुत नीचे गिरा दिया है। लोग कहते हैं कि यह मेरी कुण्ठा है, क्योंकि मैं तो सरकारी कॉलेजों में घिसटता रहा। पर सच तो सच होता है। मेरी कुण्ठा भी हो, तो क्या सच का चेहरा बदल जाएगा? फिर यूजीसी यह मानकर चलती है कि हर काम प्रोफेसर ही कर सकता है चाहे वह नियुक्ति का काम हो या पी.एच.डी. मूल्यांकन का। इसका क्या नतीजा होगा? यह आप ही विचार कर लीजिए। आज यह मसला बहुत संवेदनशील है। इसलिए मेरा कुछ भी कहना खतरे से खाली नहीं है। पर यूजीसी के स्तर पर अकादमिक श्रेष्ठता (एकेडमिक एक्सीलैंस) का महत्त्व बनाया जाना चाहिए।

- **आप इस व्यवस्था को कैसे बदलना चाहेंगे?**
- मैं किस खेत की मूली हूँ कि इसमें बदलाव के लिए कुछ सुझाऊँ? जो नीति निर्धारक हैं, वे क्या इन स्थितियों से वाकिफ नहीं हैं? यह सब सोच-समझकर किया जा रहा है। कुछ नियम तो कुछ लोगों को लाभान्वित करने के लिए बनाए जाते हैं। मैं सोचता हूँ इस मसले पर आप मुझसे अधिक प्रश्न नहीं करें।
- **आप 75 वर्ष के हो गए हैं। क्या आपका अमृत महोत्सव मनाने का मन नहीं है?**
- जिस उपलब्धि में मेरा कोई योगदान नहीं है, उसके लिए कौनसा उत्सव मनाऊँ? आप बताएँ कि मेरे 75 साल का होने में मेरा क्या योगदान है जो मैं अमृत महोत्सव मनाऊँ। फिर भई मैं कोई सेलिब्रिटी तो हूँ नहीं। मुझे यों भी इस तरह के उत्सव पसन्द ही नहीं हैं।
- **आपको कोई पश्चाताप?**
- मुझे कोई अफसोस नहीं है। कभी -कभी उन महान प्रतिभाओं की क्षुद्रताओं पर जरूर अफसोस होता है जिन्हें मैंने देखा या झेला है। पीड़ा तब और अधिक बढ़ जाती है जब ये लोग अपनी क्षुद्रताओं को महान होने के तर्क देने लगते हैं। खैर, अब रहने दीजिए बहुत हो गया।

5, अग्रसेन नगर, टोंक फाटक, जयपुर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जब तख्त गिराये जाएँगे, जब ताज उछाले जाएँगे

■ *रामनिहाल गुंजन*

कवि शमशेर बहादुर सिंह ने कभी फैज अहमद फैज पर लिखते हुए इस बात का जिक्र शिद्दत के साथ किया था कि, 'बाबजूद इसके कि फैज रोमानी शायर हैं, आज उनके कुछ शेर एक ओर तो रोमानियत में डूबे हैं, दूसरी ओर ये ही शेर एकदम इंकलाबी तहरीक का आइना हैं और एक आत्मिक ज्वाला सी भी उनमें मौजूद है। इसलिए हर शख्स चाहे वह मजदूर हो या सामन्त, एक तरह से लुत्फ लेता है। उनकी कला में एक सकून सा, एक शान्ति सी है। उनके यहाँ जो अलाव अथवा ज्योति जल रही है, वह मुक्तिबोध के यहाँ भी है।' मेरा आशय है कि जैसे मुक्तिबोध ने अपनी डायरी में सैद्धान्तिक पक्ष को भी पकड़ा और उस पर गहरा अध्ययन किया है, उसी तरह फैज ने भी मार्क्स के सिद्धान्तों को बहुत गहरा अध्ययन किया है। पाकिस्तान में भी कल्चरल फ्रण्ट ही संभाला और वहाँ जो कल्चरल एटीट्यूट कायम हुआ वह अकेले फैज की ही देन है। (कंक का मुक्तिबोध, अंक पृष्ठ 255)। कहना नहीं होगा कि फैज के जन्मशती वर्ष में शमशेर के ये विचार ज्यादा महत्वपूर्ण सिद्ध होंगे, इसमें सन्देह नहीं।

वर्ष 1911 में सियालकोट में (अब पाकिस्तान में) जन्मे फैज अहमद फैज की शायरी का फलक 1941 से 1980 तक फैला हुआ है। गौरतलब है कि उन्होंने 1928में पहली गजल और 1929 में पहली नज्म लिखी है। 1980 तक उनके सात संग्रह 'नक्शे फरियादी' (1941), 'दस्त-ए-सबा' (1952), 'जिन्दानामा' (1956), 'दस्त-ए-तह-ए-संग' (1964), 'सर-ए-वादी-ए-सीना' (1971), 'शाम-ए-शहर-ए-यारॉं' (1978) और 'मेरे दिल मेरे मुसाफिर' (1980) प्रकाशित हो चुके थे। उनकी रचनाओं के बारे में सरदार जाफरी और कमर रईस जैसे उर्दू शायर/आलोचक ने विचार व्यक्त करते हुए दबे-कुचलों और सर्वहारा वर्ग के प्रति उनकी पक्षधरता को काफी सराहा था। यौ फैज अहमद फैज का राजनीतिक जीवन 1950 के आस पास शुरु हो चुका था जबकि वे कई पत्र-पत्रिकाओं का संपादन कर चुके थे। उसी दौरान वे अमृतसर में अंग्रेजी के प्राध्यापक भी रह चुके थे। 1964 में अब्दुल हासन कॉलेज, करांची के प्रिंसिपल के रूप में काम करते

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
हुए उन्होंने अपने राजनीतिक लेखन और चिन्तन का सिलसिला जारी रखा। इसी बीच 1962 में उन्हें शान्ति पुरस्कार से सम्मानित किया गया। चूँकि गालिब को हिन्दुस्तान का शायर मानकर पाकिस्तान में उनकी उपेक्षा की जाती थी लिहाजा फैज ने उनको प्रतिष्ठा दिलाने के उद्देश्य से 1968में 'इरादा-ए-यादगार-गालिब' की स्थापना की तथा 1969 में गालिब शती समारोह का आयोजन किया। इस बीच फैज अपने मुल्क और अवाम के पक्ष में लगातार अपनी कलम का इस्तेमाल करते रहे। उसी दौर में यानि 1973 में उन्होंने एफ्रो-एशियाई लेखक सम्मेलन में अल्मा अता (सोवियत संघ) और 1978में लुआंडा (अंगोला) अधिवेशन में उनकी हिस्सेदारी दर्ज कराते हुए पाकिस्तान का प्रतिनिधित्व किया था। उस दौरान उनकी भूमिका को काफी महत्ता के साथ देखा गया। चूँकि फैज एक इंकलाब पसन्द शायर थे। इसलिए उन दिनों एफ्रो-एशियाई मुल्कों की जनता की बेहतरी और मुक्ति के लिए उनके सोच और तहरीफ को काफी अहमियत दी जा रही थी। उन्होंने उसी दौर में अपनी कई राजनीतिक कविताओं की रचना की, जिसका जिक्र आगे किया जाएगा। गौर करने की बात यह है कि एफ्रो-एशियाई लेखक संघ की पत्रिका 'लोट्स' का वे कई वर्षों तक संपादन करते रहे तथा उसके जरिए भी वे उन मुल्कों के जनसंघर्षों से जुड़ी रचनाएँ प्रकाशित करते रहे, जिनका आज भी सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टि से काफी महत्व है।

गौरतलब है कि यह फैज अहमद फैज की जन्मशती वर्ष भी है। इसलिए शमशेर की उपयुक्त बातों का गहरा अर्थ है। कहने की जरूरत नहीं है कि फैज शमशेर के हमउम्र थे। उनको याद करते हुए शमशेर ने जिस आत्मीयता और वैचारिक ऊर्जा के साथ उनकी रचनाओं का उल्लेख किया है, उसको देखते हुए कहा जा सकता है कि फैज इस उपमहादेश के वैसे शायरों में थे, जिन्हें उर्दू और हिन्दी दोनों भाषाओं के लोग बड़े प्यार और आदर के साथ याद करते हैं। यह अजीब संयोग है कि शमशेर और फैज दोनों उर्दू और हिन्दी को जुड़वाँ बहनें मानते थे। दूसरी ओर, शमशेर का यह भी मानना था कि 'उर्दू की समस्या केवल भाषागत, साहित्यिक व उर्दू वालों की ही समस्या नहीं है। वो एक बहुत बड़ी और गहरी सांस्कृतिक समस्या है। कम से कम हमारे उत्तरी भारत के सांस्कृतिक जीवन की समस्या है।' (उप. पृष्ठ 253) इसी प्रकार फैज ने भी भाषा की समस्या पर गंभीरता से विचार करते हुए अपनी गजलों और नज़मों की भाषा को जन साधारण की भाषा के नजदीक ला दिया है। यह बात खासतौर पर उनके 'शाम-ए-शहर-ए-याराँ' तथा 'मेरे दिल मेरे मुसाफिर' जैसे संग्रहों की रचनाओं से साफ हो जाती है। वैसे उनकी नज़मों की भाषा ज्यादातर आम जनता की समझ में आसानी से आने वाली हैं। उल्लेखनीय है कि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Digitized by Eternal Knowledge Foundation Of Education Bantalab, Jammu

शमशेर की पुस्तक 'मीजान' में फैज आदि उर्दू के कई शायरों पर लिखे उनके लेख संकलित हैं, जिनमें गुजरने पर हिन्दी-उर्दू की गंगा-जमुनी संस्कृति के दर्शन सहज ही हो पाते हैं। इस पुस्तक में फैज के जीवन संघर्ष और कृतित्व का विस्तार से वर्णन है, जो उनकी अहमियत को भी दर्शाता है।

यों शुरू में फैज अहमद फैज ने मुहब्बत को अपनी जिन्दगी का जरूरी हिस्सा मानते हुए उसका सामान्यीकरण भी किया था, जो उनकी लौट जाती है इधर को भी नज़र क्या कीजे/अब भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कीजे? और भी दु:ख है जमाने में मुहब्बत के सिवाय/राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवाय/मुझसे पहली सी मुहब्बत मेरी महबूब न माँग, जैसी पंक्तियों से साफ हो जाता है। शमशेर ने भी अपनी प्रेमानुभूति से जागरण का अहसास कराते हुए एक शेर में लिखा था, 'कोई तो साथ-साथ मेरी बेखुदी में था/कैसे मैं होश में आया जबाव दो।' इससे यह जरूर पता चल जाता है कि फैज और शमशेर जिस समय प्रेम कविताएँ लिख रहे थे वह 1936के आस-पास का दौर था जबकि प्रगतिशील लेखक संघ का हिन्दी-उर्दू के लेखकों पर गहरा असर था। यह आकस्मिक और अकारण नहीं था कि फ़ैज़ और शमशेर की रचनाओं के स्वर में बदलाव भी उसी दौर में आया था। जहां तक फ़ैज़ की राजनीतिक रचनाओं-नज़्मों और गज़लों का प्रश्न है। गौर करने की बात यह है कि उन्होंने रूसी क्रान्ति से प्रभावित होकर प्रगतिशील विचारधारा के तहत वैसी नज़्मों और गज़लों की रचना की थी। मार्क्सवादी नजरिए से अपने लेखों और भाषणों में भी समय-समय पर साहित्यकार के लेखकीय दायित्व पर वे अपने विचार व्यक्त करते रहे। उनके लेख और भाषण क्रमश: उनकी पुस्तकों 'मीजान' (1963) और 'मताए लौह-ओ-कलम' (1973) में संग्रहित हैं। उनके पत्रों का एक संग्रह भी 'सलीब मेरे दरीचे में' नाम से 1971 में प्रकाशित हो चुका है, जिसमें पत्नी एलिस फैज के नाम जेल से लिखे गए उनके पत्र संकलित हैं। साहित्यकार के लेखकीय दायित्व के प्रसंग में फैज ने अपने एक लेख में जो शमशेर द्वारा हिन्दी में अनुदित है, लिखा था-'लेखनी के संघर्ष और कर्म के संघर्ष का योग होने पर अनुभव और अभिव्यक्ति दोनों अपनी पूर्णता की मंजिल तक पहुँचते हैं और सही साहित्य का यही उद्देश्य है। अहसास और विवेक, ज्ञान और कर्म, अनुतीक्षण और उद्देश्यपूर्ण संघर्ष यही विशेषताएँ साहित्य और साहित्यकार की महानता के मापने का मानदण्ड है।' (उप. पृ. 259)

दरअसल फैज संघर्ष और साधना के जिन दो रूपों को महत्व के साथ रेखांकित करते थे, वे हैं लेखनी का संघर्ष अर्थात् सिद्धान्त का संघर्ष और कर्मभूमि का संघर्ष। उनके अनुसार, ''हर साहित्यकार सामाजिक सुधार अथवा यथार्थ की विवेकपूर्ण समझदारी अथवा उसकी उपेक्षा, युगीन समस्याओं से सरोकार या उनसे पलायन का ही प्रचार करता है। यह प्रचार अपने आप में संघर्ष और साधना का अमल है'' (पृ.259)। उल्लेखनीय है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
कि फ़ैज़ के समय में पाकिस्तान में ऐसे साहित्यकारों की लंबी कतार थी, जो कलावाद की वकालत करते थे। वे केवल सौन्दर्यशास्त्रीय मूल्यों के विकास में संलग्न थे। दरअसल बुजुर्आ वर्ग के विचारों से परिचालित साहित्यकार ही ऐसे ह्रासशील कला मूल्यों के पक्षधर होते हैं। अत: ऐसे ही लोग सत्ता और व्यवस्था से अक्सर पुरस्कृत और सम्मानित होते रहते हैं। लिहाजा ऐसे साहित्यकार ही फैज की तनकीद (आलोचना) का शिकार बने, जो उनके इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि, 'कुछ भावुक लोग व्यवस्था के नेताओं और सत्ता का बँटवारा करने वालों के सामने अपने-आपको मजबूर और असहाय पाते हैं और वस्तुस्थिति के सुधार से मायूस होकर व्यक्तिगत विद्रोह का झण्डा उठाने लगते हैं। कुछ लोग इन्हीं कारणों से शासक सत्ता से समझौता कर लेते हैं और विरोध में उठाए गए हर प्रकार के सुधारवादी अथवा क्रान्तिकारी प्रयत्नों को साहित्यकार की मर्यादा के अनुकूल नहीं समझते। ये दोनों दृष्टिकोण सचेतन अथवा अचेतन रूप से जीवन और साहित्य की कठिन जिम्मेदारियों से पलायन के बहाने ही हैं।' (उप. पृ. 256)

गौरतलब है कि फैज 1951 और 1958में पाकिस्तान सरकार द्वारा जेल में डाल दिए गए थे। उनकी किताब 'जिन्दानामा' में जेल के दिनों की रचनाएँ संकलित हैं, जिनमें से 'मुलाकात', 'दर्द आएगा दबे पाँव' की कुछ पंक्तियाँ देखें-

दर्द आएगा दबे पाँव लिए सुर्ख चिराग।
वो जो एक दर्द धड़कता है कहीं दिल से परे।।

×××

शोला-ए-दर्द जो पहलू में लयक उठेगा।
दिल की दीवार पे हर नक्श दमक उठेगा।।

जाहिर है कि फैज अपने कारावास के दिनों में भी अपने समाज और देश की तत्कालीन स्थितियों के बारे में गंभीरतापूर्वक सोच रहे थे और अवाम को अपनी बेचैनी से आगाह कर रहे थे, जो उनके लिए दर्द और सुर्ख चिराग जैसे शब्द मुक्ति का संदेश दे रहे थे। उन्हीं दिनों की लिखी रचनाओं में वे ज्यादातर 'जंजीर', 'कफस', 'सिलसिला', 'दार-ओ-रसन' और 'सम्पाद' जैसे शब्दों का भी इस्तेमाल कर रहे थे, जो आकस्मिक नहीं हैं। दरअसल ये शब्द उस दौर की उनकी मन:स्थितियों की याद दिलाते हैं। दूसरी ओर वे 'ये: फस्ल उम्मीदों की हरदम' नामक रचना में फिर अगली रुत की फिक्र करो कहकर अपने मुल्क की अवाम को अगली तैयारी का संदेश दे रहे थे। इस रचना में लोकतंत्र की बहाली के लिए की जा रही संगठनात्मक तैयारी का भी संकेत है, जो उन दिनों पाकिस्तान में चल रही राजनीतिक उथल-पुथल का सूचक है। फैज में अवामपरस्ती और वतनपरस्ती भी भरपूर थी। एक कविता में उन्होंने अपनी देशभक्ति की भावना व्यक्त करते हुए लिखा था-'अपनी दौलत यही अपना धन है यही/अपना जो कुछ भी है ऐ वतन है यही/वार देंगे

CC-0 Anand Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

CC-0. Omkar Nath Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

ये: सब कुछ तेरे नाम पर/तेरे नाम पर ऐ वतन, ऐ वतन/हम लुटा देंगे जाने तेरे नाम पर।' कहने की जरूरत नहीं कि फैज अपने मुल्क यानि पाकिस्तान को बेइंतहा प्यार करते थे, लेकिन हिन्दुस्तानी अवाम के प्रति भी उनके दिल में गहरा प्यार था। इसी प्रकार दुनिया के दूसरे मुल्कों और उनके अवाम की बेहतरी की खातिर भी वे उतने ही शिद्दत के साथ फिक्रमंद थे। उनकी यह फिक्रमंदी उनकी नज़्मों और गज़लों में बखूबी देखी जा सकती है। चूँकि फैज मजलूमों, दबे-कुचलों और कमजोर लोगों के साथ-साथ मेहनताना अवाम के बारे में उन दिनों ज्यादा सोच रहे थे। इसलिए उन्होंने अपनी सोच शीर्षक कविता में लिखा है-

मेरा दिल गमगीं है तो क्या
गमगीं ये दुनिया है सारी
ये: दु:ख तेरा है ना मेरा
हम सबकी जागीर है प्यारी

क्यूं न: जहाँ का गम अपना लें
बाद में सब तदबीरें सोचें
बाद में सुख के सपने देखें
सपनों की ताबीरें सोचें।

बेफिक्रे धन-दौलत वाले
ये: आखिर क्यूं खुश रहते हैं?
इनका सुख आपस में बांटे
ये भी आखिर हम जैसे हैं।।

जाहिर है पूरी दुनिया के दुखी मानव समाज के प्रति गहरी सहानुभूति रखने वालों में फैज अहमद फैज भी थे, जो धन-दौलत वालों के सुख को गरीबों में बाँटने की बात कहते थे। वैसे कभी निराला ने भी अपनी एक गजल के शेर में लिखा था-

भेद कुल खुल जाए वह सूरत हमारे दिल में है।
देश को मिल जाए जो पूँजी तुम्हारी मिल में है।

दूसरी और फैज ने अपनी एक मशहूर गजल 'अपना हिस्सा' में आगे बढ़कर मेहनतकशों की खातिर पूरी दुनिया को ही माँग करते हुए लिखा था-

हम मेहनतकश जगवालों से
जब अपना हिस्सा माँगेंगे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस खेत नहीं इक देश नहीं

हम सारी दुनिया माँगेंगे।

ये सेठ व्यापारी रजवाड़े

दस लाख तो हम दस लाख करोड़

ये कितने दिन अमेरिका से

लड़ने का सहारा माँगेंगे।

यो अमेरिकापरस्त पूँजीपतियों के खिलाफ फैज ने कई रचनाएँ लिखी हैं। उन्होंने अपनी राजनीतिक कविताओं में अपने मुल्क के साथ-साथ ईरान, फिलीस्तीन, अफ्रीका, रूस, बैरूत आदि देशों की समस्याओं को लेकर कुछ जरूरी सवाल भी उठाए थे, जो उस समय के लिए काफी मौजूद थे। उन्होंने फिलीस्तीनी बच्चों के लिए लिखी एक लोरी में लिख था-'मत रो बच्चे तेरी आजी का/डोला पराए देश गया है' और यह कहकर फैज उस देश की व्यवस्था चोट करते हैं। कहने की जरूरत नहीं कि फैज अपनी कलम का इस्तेमाल उस समय जरूरी तौर पर करते थे, जब देश और दुनिया के पैमाने पर कोई महत्वपूर्ण घटना घटती थी। उन्होंने अपनी लोह-ओ-कलम नामक रचना में लिखा था-

'हम परवरिश-ए-लौह-ओ-कलम करते रहेंगे/जो दिल से गुजरती है रकम करते रहेंगे/मंजूर ये तल्खी, ये सितम हमको गवारा/दम है तो मदावा-ए-अलम करते रहेंगे।' जाहिर है फैज ने अपनी 'लौह-ओ-कलम' से जुल्म-ओ-सितम को दूर करने की हरसंभव कोशिश करने का संकल्प लिया था, जो उनके मुल्क और अवाम के लिए एक सबक भी था। उल्लेखनीय है कि कभी फैज को वतनबदर (देशनिकाला) का दंश भी झेलना पड़ा था जबकि वे अपने मुल्क में अवाम की बेहतरी के लिए बदलाव का सपना देख रहे थे। 'मेरे दिल मेरे मुसाफिर' नामक संग्रह की कई रचनाएँ उसी दौर की हैं। ऐसी स्थिति में फैज उस समय तक इन्तजार करना जरूरी समझते थे-'जब जुल्म-ओ-सितम के कोह-ए-गराँ/रुई की तरह उड़ जाएँगे। हम महकूमों के पाँव तले/जब धरती धड़-धड़ धड़केगी।' यानी जुल्म-ओ-सितम की बातें कहते हुए फैज की नज़र अपने देश और समाज में आने वाले बदलाव पर भी थी जिसके लिए वे अपनी कविता में और जीवन में बराबर संघर्ष करते रहे थे। उन्होंने कभी मजहब के नाम पर समझौता नहीं किया और न ही संघर्ष की राह से मुँह मोड़ा। ये बराबर समाज और मुल्क में बेहतर बदलाव के लिए फिक्रमंद बने रहे। इसके सबूत में उनकी गज़लों के कुछ अशआर यहाँ पेश हैं-

शेख साहब से रस्म-ओ-राह न: की।

शुक्र है जिन्दगी तबाह न: की।।

CC-0 Kashmir Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025 Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सबा ने फिर दर-ए-जिन्दाँ पे आके दी दस्तक।
सहर फरीब है दिल से कहो न: घबराए।।

तुम आए हो, न: शब-ए-इन्तजार गुजरी है।
तलाश में है सहर बार-बार गुजरी है।।

मुकाम फैज कोई राह में जँचता ही नहीं।
जो फू-ए-यार से निकले तो सू-ए-दार चले।।

ऊपर की पंक्तियों में क्रमश: धर्म को तरजीह नहीं देने, क्रूर शासन की रात के अन्त और नई सुबह के आगमन का संकेत देने, सुबह की खोज में इन्तजार की रात के बार-बार गुजरने तथा रास्ते में आने वाली किसी मुकाम के नहीं जँचने पर दोस्त की गली से निकलकर सीधे फाँसी के तखते की ओर प्रस्थान करने आदि बातों से फैज के संघर्षशील जीवन की सूचनाएँ मिलती हैं। बाद में उनकी लिखी 'फैज सर पर जो हर इक रोज गुजरी' और 'इन दिनों बदनाम है हर दीवाने का नाम' जैसी पंक्तियों से उस जमाने में क्रूर शासन से देश को आजाद कराने वाले देशभक्त दीवानों की मुक्ति युद्ध की कठिन परिस्थितियों की सहज ही कल्पना की जा सकती है।

यों फैज ने हैदराबाद में जन्मे अपने समय के मशहूर क्रान्तिकारी खादर मरबदुम मुहीउद्दीन को भी जो तेलंगाना किसान आन्दोलन में शरीक थे, यह कहना जरूरी समझा। उनकी याद में लिखी अपनी दो गजलों के जरिए जिस परम्परा का उन्होंने निर्वाह किया, वह एक क्रान्तिकारी लेखक द्वारा दूसरे क्रान्तिकारी लेख का स्मरण किए जाने की अच्छी मिसाल है। कुछ पंक्तियाँ देखें-

आपकी याद आती रही रातभर
चाँदनी दिल दुखाती रही रातभर
एक उम्मीद से दिल बहलाता रहा
इक तमन्ना सताती रही रातभर।।

xxx

घर जो वीराँ था सर-ए-शाम कैसे-कैसे
फुरकत-ए-यार ने आबाद किया आखिर-ए-शब
जिस अदा से कोई आया था कभी अब्बल-ए-सुबह
उसी अंदाज से चल वाद-ए-सबा आखिर-ए-शब

इन पंक्तियों से मखदूम की इंकलाबी शख्सियत के साथ-साथ उनकी शायरी की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
ऊँचाई के प्रति फैज की विनम्र भावना का बोध होता है। कहने की जरूरत नहीं कि फैज भी उसी परम्परा के शायर थे, जिनकी क्रान्तिकारी विरासत के बाद के कुछ शायरों ने आगे बढ़ाया। फैज की इस अमन और आजादी की खातिर ईरानी छात्रों के नाम लिखी गई नज़्में भी हैं, जिनसे जाहिर होता है कि फैज दुनिया के दूसरे मुल्क के बारे में और उन्हें पॉल रॉब्सन अफ्रीका और ईरानी पात्रों को संबोधित पंक्तियाँ हैं–

धरती धड़क रही है मेरे साथ अफ्रीका
दरिया थिरक रहा है तो बन दे रहा है ताल
मैं अफ्रीका हूँ धर लिया मैंने तेरा रूप
मैं तू हूँ, मेरी चाल है तेरी बबर की चाल
आ जाओ अफ्रीका।

ये: कौन सखी है
जिनके लहू की अशर्फियाँ छन–छन, छन–छन
धरती की पे हम प्यासी
कशकोल की भरती जाती है।

कहना नहीं होगा कि अफ्रीका और ईरानी छात्रों के दु:ख से दु:खी फैज की ये रचनाएँ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी उन दिनों काफी चर्चित हुई थीं। ईरानी छात्रों को जीस्त की रानी का झूमर और अमन देवी का कंगन कहकर फैज ने उनके बलिदान को चिरस्मरणीय बनाने का प्रयत्न किया था। इसी प्रकार बैरूत पर इजराइल के आक्रमण के समय लिखी कविता हो या रूसी क्रान्ति की 50वीं वर्षगाँठ पर लिखी रचना 'इंकलाब–ए–रूस' हो, इनमें फैज की क्रान्तिकारी चेतना के दर्शन आसानी से किए जा सकते हैं। वैसे फैज अपनी उन रचनाओं के लिए ज्यादातर याद किए जाते हैं, जो उनके काव्य व्यक्तित्व के साथ अभिन्न हो चुकी है। उनकी 'तराना' शीर्षक कविता वैसी ही कविता है, जिसका इंकलाब पसन्द अवाम के बीच खास मुकाम है। पंक्तियाँ देखें–

दरबार–ए–वतन में जब इक दिन एक जाने वाले जाएँगे
कुछ अपनी सजा को पहुँचेंगे, कुछ अपनी जजा ले जाएँगे।
ऐ खाकनशीनों, उठ बैठो वो वक्त करीब आ पहुँचा है।
जब तख्त गिराए जाएँगे जब ताज उछाले जाएँगे।
अब टूट गिरेंगी जंजीरे अब जिन्दाओं की खैर नहीं
जो दरिया झूमके उट्ठे हैं तिनकों से न टाले जाएँगे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कटते भी चलो, बढ़ते भी चलो, बाज़ू भी बहुत है सर भी बहुत
चलते भी चलो, के: अब डेरे मंजिल ही पे डाले जाएँगे।
ऐ जुल्म के मातो, लब खो लो चुप रहने वाले चुप कब तक
कुछ हश्र तो इनसे उट्ठेगा, कुछ दूर तो नाले जाएँगे।।

इस प्रकार कहने की जरूरत नहीं है कि फैज अहमद फैज अपने समय के महान् लेखक थे, जिन्होंने अपने लेखकीय दायित्व के प्रति सर्वाधिक सजग रहकर देश और दुनिया के नक्शे पर आजाद तराने लिखने और दुनिया के मजलूमों और अमन पसन्द अवाम को बराबर जगाने का काम किया। यों उसकी नज़्में पहले भी मेहनतकश जनता को साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के खिलाफ एकजुट होकर संघर्ष करने की प्रेरणा देती हैं और आज भी जन आन्दोलनों और व्यापक जनता के अधिकारों की लड़ाई के मुद्दे पर प्रेरक का काम करती हैं। इसी अर्थ में फैज को संघर्ष और साधना का प्रतीक मानकर याद करने का अपना महत्व भी है।

नया शीतल टोला,
आरा-802301 (बिहार) मो. : 07250201038

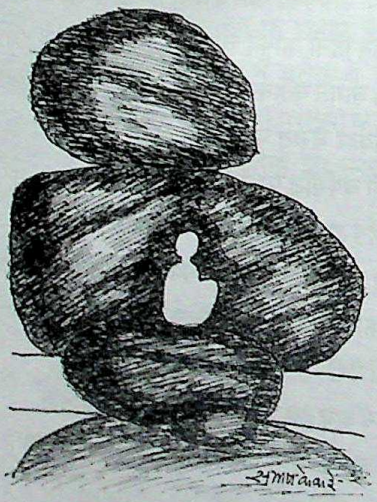

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मरी घोड़ी

■ *विजय*

लोकपाल सिंह अब केन्द्र में मंत्री ही नहीं है अपितु अपनी पार्टी के अध्यक्ष भी हैं। जब से केन्द्र में मिली जुली सरकार बनना शुरू हुई है, उसका केबिनेट मंत्री बनना निश्चित रहता है, चाहे उसकी पार्टी के सिर्फ चार एमपी ही और हैं। प्रांत में भी उनकी पार्टी के सोलह एमएलए हैं, मगर तीन मंत्रीपद उनकी पार्टी को मिले हुए हैं। पार्टी का हर सदस्य उनकी आज्ञा से बंधा रहता है। पार्टी के वे सर्वेसर्वा हैं।

लोकपाल सिंह का गाँव सुरनाज कभी भुच्च गाँव था मगर आज वह जगमगाता गाँव है। उसी गाँव के सुखपाल सिंह के पिता हैं, कभी बहुत मामूली किसान थे। उनकी आँखें हमेशा आकाश ताकती रहती थीं, क्योंकि खेतों की आमदनी से ही घर खर्च चलता था और खेतों की सम्पन्नता मेघदुलारों पर निर्भर रहती थी। सुखपालसिंह का जीवन सहजता और दिक्कतों से भरा रहता था। उस पर भगवान की ऐसी मर्जी रही कि पत्नी दुलारी ने सात बच्चों को जन्म दिया, मगर पाँच-साल के होते-होते सब भगवान को प्यारे हो गये, सिर्फ लोकपालसिंह बचे रहे। इसीलिए माँ और बाप दोनों के लाडले थे वे पिता को लगा कि खेतीबाड़ी का कड़ा काम बेटे के लिए ठीक नहीं रहेगा। उसे खूब पढ़ाऊंगा और अफसर बनाऊंगा। पढ़ाई में बुरे भी नहीं थे लोकपालसिंह।

गाँव के इकलौते स्कूल से पाँचवी पास कर उनका दाखला सिद्धेशपुर कस्बे के हाईर सैकेण्डरी स्कूल में करा दिया गया। इधर-उधर से लेकर सुखपालसिंह ने उन्हें एक पुरानी साईकिल भी दिलवा दी, क्योंकि कस्बा तीन मील की दूरी पर था। उन दिनों गाँव सुरनाज में साईकिल भी बड़ी चीज थी। गाँव के मुखिया और पचास बीघे की जोत वाले पृथ्वी सिंह के लड़कों, दलपत और दानवीर के पास थीं या साहूकार प्रदीप के बेटे पुखराज के पास थी। वे तीनों साइकिल से कस्बे के स्कूल जाते थे। दलपत और दानवीर अक्सर लोकपालसिंह की साईकिल से टक्कर मार उसे खराब कर खूब हँसते। लोकपालसिंह की जाति और गरीबी का खूब मजाक उड़ाते। पुखराज चुपचाप रहता। पूछने पर भी सत्य नहीं उगलता।

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
लोकपालसिंह, पिता सुखपाल सिंह से शिकायत करता तो उलट-पलट देते...बड़न के छोरों से न टकराया कर।

दस-पाँच दिन लोकपालसिंह को स्कूल पैदल जाना पड़ता तब साईकिल ठीक हो पाती। हाँ, पुखराज, दलपत और दानवीर जब नहीं होते तो लोकपालसिंह को आगे बैठा लेता था। नफरत हो चली थी लोकपालसिंह को ठाकरों के लड़कों से। किस्मत से आठवीं में पुखराज और दलपत फेल हो गए। वे फिर स्कूल नहीं गए।

चुनाव करीब थे, इसलिए दानवीर को पृथ्वी सिंह ने समझाया-''लोकपाल को तंग करना बंद कर, उसके बाप की वजह से हमें उसकी जात का वोट मिलता है।'' इस तरह लोकपालसिंह आराम से खटारा साईकिल से स्कूल आने-जाने लगा और पृथ्वी सिंह तिवारा गाँव के मुखिया और सरपंच चुन लिए गए।

दानवीर ने दसवीं तीसरी श्रेणी में पास करली और इस तरह भुच्च गाँव सुरनाज गंज के पहले मैट्रिक पास व्यक्ति बन गए। पृथ्वीपाल सिंह ने पूरे गाँव की दावत की मगर जब खाने के लिए सुखपाल सिंह और उनकी जातवालों को अलग बैठाया गया तो लोकपालसिंह चुनमुना उठा। पृथ्वीसिंह ताड़ गए सो वहाँ पहुँच लोकपालसिंह की पीठ ठोक बोले-''दानवीर तो दसवीं कर घर-घाट सँभालेगा पर तुम एक दिन सूरज की तरह चमकोगे।''

लोकपालसिंह चुपचाप पत्तल के आगे बैठ गए। जानते थे कि आजादी के वर्षों बाद भी फर्क मिटा नहीं है। कस्बे के स्कूल में चार अन्य दलित विद्यार्थियों के साथ उन्हें पीछे बैठना पड़ता है। समझ गए कि ठाकुर की तारीफ चुनावी खेल भर है।

लोकपालसिंह उसी खटारा साईकिल पर स्कूल जाते रहे। वहीं से हाई स्कूल व हायर सैकण्डरी सेकण्ड डिवीजन में पास किए मगर सुखपाल सिंह कोई दावत न दे सके। शहर इन्दिरा नगर में उन्हें बी.कॉम में दाखला मिल गया। सुखपाल सिंह को उनकी पढ़ाई के लिए पृथ्वीसिंह को दो बीघे जमीन बेचकर खर्च निकालना पड़ा। दानवीर, दलपत और पृथ्वीसिंह की असहिष्णुता ने उन्हें जातीय दुश्मनी से अभिभूत कर दिया था। बी.कॉम. की तृतीय वर्ष में पहुँचकर उन्होंने कॉलेज प्रेसीडेंट का चुनाव लड़ा। उन्हें लगा कि कॉलेज में दलित लड़के इतने कम हैं कि उनके वोटों से वे जीत नहीं सकते हैं। उन्होंने राजनीति प्रक्रिया को समझने कोशिश की। वे समझ गए कि राजनीति में अपना-अपना हर किसी का मूल्य होता है। वोट प्राप्त करने के लिए भावनात्मक तमाशे जरूरी होते हैं और जातीय नफरत की जगह उनका नारा विद्यार्थियों में जाति मिटाने का हो गया। सवर्ण युवक भी उदारता दिखाते हुए उनके साथ हो लिए और वे वाकई में चुनाव जीत गए।

पृथ्वीसिंह सोचते थे कि सुखपाल सिंह का लड़का पढ़-लिख गया तो कहीं बड़ा अफसर लग जायेगा। अफसरों को पटाना उन्हें आता है, मगर लोकपालसिंह के अनुभव ने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उन्हें बताया कि बड़े से बड़ा सरकारी अफसर भी नेता का असल में खिदमतगार भर होता है। राजनीति ही एकमात्र रास्ता है, जिस पर चलकर हिन्दुस्तानी अजय बनता है।

कॉलेज के अध्यक्ष बनते ही राज्य के मुख्यमंत्री को लोकपालसिंह में महान नेता बनने ने गुण दिखाई दे गए। फटाफट उन्हें पार्टी सदस्य बना दिया गया। साईकिल की जगह उन्हें मोटरसाईकिल दे दी गई। हाँ, गाँव का सिर्फ पुखराज उनकी ताकत को समझ सका। वह फौरन शहर आ गया और हर तरह से लोकपालसिंह की मदद की। साहूकार संतान होते हुए भी वह लोकपालसिंह का कृपा पात्र बन गया।

पिछले साल से गाँव सुरनाज और आसपास के इलाके सूखाग्रस्त थे। केन्द्रीय और प्रांतीय मदद भी वहाँ पहुँची थी, मगर थानेदार, तहसीलदार, पृथ्वीसिंह और उसके सगों की डकार में डूब गई थी। चुनाव जीतने के बाद कॉलेज के साथियों के साथ लोकपालसिंह गाँव पहुँचे तो पिता से सारा हाल ज्ञात हुआ। तुरंत पृथ्वीसिंह से मिलने वे पहुँच गए। बेटा 'मुन्ना' कहते रहे पृथ्वीसिंह। सफाई देते रहे मगर घाघ पृथ्वीसिंह ने कमजोर घरों में सरकारी मदद न पहुँचने का कारण नहीं बताया। लोकपालसिंह ने कह दिया कि वे मुख्यमंत्री और अखबारों को अपना बयान देंगे। पृथ्वीसिंह ने गीदड़ धमकी समझी और शाम के अंधेरे में चार लठैत लोकपालसिंह को ठिकाने लगाने भेज दिये, मगर वे तुरंत लौट आए...न बाबा! लाठी से कुछ न होगा। कम से कम बीस लड़के वो भी तमंचे वाले लोकपालसिंह के गिर्द बने रहते हैं।

इन्दिरा नगर पहुँच लोकपालसिंह ने मुख्यमंत्री को फोन पर सारी बातें बताईं और कहा कि आप कुछ करें नहीं तो वे अखबारों का दरवाजा खटखटाएंगे और दूसरे दिन ही कार्यवाही शुरू हो गई। तहसीलदार और थानेदार मुअतिल हो गए। एक ए.एस.आई. दामोदर पृथ्वीसिंह को पकड़ने पहुँच गया। दामोदर से पृथ्वीसिंह ने बहुत कहा कि पूरा थाना सरकारी मदद में हिस्सेदार रहा है फिर उन्हें पकड़ने पुलिस क्यों आई है तो दामोदर ने कहा–"तहसीलदार और थानेदार मुअतिल हैं। हुकुम सीधे मुख्यमंत्री से आया है, इसलिए गिरफ्तारी जरूरी है।"

दानवीर और दलपत देखते रहे और पृथ्वीसिंह गिरफ्तार हो गए। मुकदमा दो साल चला और थानेदार एवं तहसीलदार को तीन–तीन साल व पृथ्वीसिंह को सात साल सजा हुई। लोकपालसिंह ने सिरनाज गाँव के साथ अन्य गाँवों को मुख्य सड़क से जोड़ने के लिए सड़क बनवा दी। इन्दिरा नगर में झोपड़ी झुग्गी वालों को जमीन का मालिकाना हक दिलाया, वहीं खाली पड़े सुरमई मैदान में नया बाजार बनवा दिया। सुरमई मैदान के आगे इण्डस्ट्रियल एरिया की नींव डलवा दी। पार्टी ने उन्हें एम.एल.ए. का टिकिट दिया। गाँव सुरनाज और अन्य गाँवों में लोकपालसिंह की जय–जयकार गूँज रही थी, क्योंकि गाँव–

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education,Bantalab Jammu
गाँव जाकर वे समस्याएं नोट करते, कुछ समस्याएं तुरत सुलझाते और शेष के लिए वायदा कर आते कि एक चुनाव में तो सारी समस्याएँ नहीं पर दो चुनाव में ये सारी समस्याएँ निपटा देंगे। सामाजिक प्रजातंत्र को भूले लोग राजनीतिक प्रजातंत्र के झाँसे में आसानी से आ जाते।

सड़क के ठेकेदार ने लोकपालसिंह का गाँव में नया मकान बनवा दिया था तो इन्दिरा नगर के दुकानदारों ने घर में हर सुख-सुविधा का सामान भर दिया। इंडस्ट्री एरिया वालों ने बड़ा सा बिजली का जनरेटर घर के आगे लगवा दिया था, जिसका दूसरा कनेक्शन पुखराज के घर पहुँच गया था। सारा गाँव जब तपता तो सुखपालसिंह के घर का एसी चलता रहता। चुनाव जीतते-जीतते बिजली के खम्बे भी गाँव में लग गए और तीन माह बाद ही गाँव में बिजली पहुँच गई, मगर दिन के सोलह घंटे बिजली और गाँवों की तरह गायब रहती।

सुखपालसिंह ने खेती करना छोड़ दिया। बेटे के समझाने पर मुखिया और सरपंच का चुनाव लड़कर जीत हासिल की। सुखपालसिंह ने यह कहने पर कि उन्हें तो कुछ अता-पता नहीं है और वे तीसरी तक ही पढ़े हैं, लोकपालसिंह ने समझा दिया-''करना कुछ नहीं है। जैसा पुखराज कहे वैसा करते जाना।''

''पर तेरी शादी करनी है मुझे अभी'' बाप के कहने पर मुस्करा दिए लोकपालसिंह एम.एल.ए.।

यद्यपि रघुराम मामूली किसान थे पर उनकी बेटी ने आठवीं पास की थी। भतीजों ने उकसाया-''चाचा लगा दो जोर। एम.एल.ए. दामाद होगा तो हमारी मदद करेगा। हम भी ऊपर उठेंगे। रही तुम्हारी तो तुम तो हमारे घर के ही हो।'' रघुराम ने जोर लगा दिया और शादी तय हो गई। बारात सोनपुर गई। कई टेंट लगे थे। मंत्री और एम.एल.ए. एक टैंट में, साथी विद्यार्थी अलग टेंट में और रिश्तेदारों व गाँव वालों के लिए अलग टेंट थे। खाने में क्या नहीं था और पीने में भाँग से लेकर अंग्रेजी की नदी बह रही थी। रघुराम ने इस शादी के लिए अपने सारे खेत खलिहान बेच दिए थे।

लौटकर लोकपालसिंह ने पत्नी को देखा, सोलह साल की सांवली और कजरारी लड़की लगी उसे, मगर तीन दिन में ही लोकपालसिंह समझ गए कि जिस्म से लुभावनी पत्नी की जुबान तेज तलवार थी। छूटते ही भतीजों की फरमाईशें पूरी करने का ऑर्डर दे डाला और कहा कि एम.एल.ए. साहब का ससुर क्या कोई पद नहीं संभाल सकता है?

चिढ़ गए थे लोकपाल सिंह-''छोरी का ब्याह किया है। व्यापार या समझौता नहीं। मैं ससुरालियों के लिए धेला भर न करूँगा।'' और तर्राती सरिता को बाहों में खींच आखरी रात का जश्न पूरा किया था। सरिता तर्राती और तड़फड़ाती रह गई थी। दूसरे दिन लोकपालसिंह प्रांत की राजधानी चले गए थे। यदा-कदा गाँव आते तो उनके इस्तकबाल में बिछी पत्नी से दूर ही रहते। ज्यादातर वक्त पुखराज के साथ ही काटते।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और एक दिन बड़ी सी गाड़ी उनके घर के सामने आ लगी। तीन दिन में ड्राइवर ने पुखराज को गाड़ी चलाना सिखा दिया और शहर ले जाकर लाईसेंस भी दिलवा दिया। सरिता को शुरू में लगा था कि गाड़ी उसके लिए भेजी गई है, मगर शीघ्र असलियत समझ गई। सास के सामने खूब बड़बड़ाई, मगर सुखपाल को इधर-उधर ले जाकर जब पुखराज लौटा तो खामोश रह गई। उसे लगा कि कहीं लोकपालसिंह ने तलाक दे दिया तो कहीं की नहीं रहेगी। बाप तो जैसे-तैसे भाई-भतीजों की बातें सहता वक्त काट रहा है।

लोकपालसिंह अब मंत्री हो चुके थे। बाप जब भी घर आते तो गाँव की बेहतरी की बात कहता। मगर लोकपालसिंह समझा देते-''ये सारे झंझट पुखराज से कहा करो। वो जो ठीक समझेगा करा देगा। अगला सरपंच और मुखिया उसी को बनवाना है।''

''हाँ, मैं बूढ़ा ही नहीं, थक भी बहुत गया हूँ। पर वह तो गाँव का डॉक्टर भी बन गया है। हर मर्ज की आयुर्वेदिक दवा उसकी दुकान में है। दुकान भी खूब बड़ी कर ली है। जब जरूरत होती है, हमारी गाड़ी शहर ले जाता है। माल भरके ले आता है। सुना है बंदूकें भी कई गाँवों में उसी ने सप्लाई की है।''

''अभी तक पेट्रोल भी वही डलवाता रहता है। कंपनी का काम करा दिया था मैंने सो उन्होंने गाड़ी भिजवा दी थी। तुम्हारा तो ड्राइवर ही बना रहता है।''

''बहू को ले जा अब तो। कब तक अकेला रहेगा।'' बाप ने बेटे के रूख को समझ बात बदली।

सुनके कुछ क्षण खामोश रहा लोकपालसिंह फिर बोला-''तुम्हें पुखराज ने शायद बताया नहीं। ये बहू शहर ले जाने लायक नहीं थी। जुबान कतरनी की तरह चलती थी। मैंने पढ़ी-लिखी, सुंदर और समझदार लड़की से रिश्ता कर लिया है। वो तीन महिनों में तुम्हें दादा बनाने वाली है।''

सरिता को भूल बोले सुखपालसिंह-''गाँव लायेगा उन्हें?''

''न! तुम्हें शहर ले जाऊँगा।''

लोकपालसिंह चला गया। सुखपालसिंह ने पत्नी दुलारी को बताया तो गद्गद् हो गई फिर चौंक कर बोली-''और ये! सरिता।''

''क्या नहीं है घर में। ऐश करे। आराम से वक्त काटे।''

पति इस बार भी रात उसके साथ न काट लौट गया। विमूढ़ थी सरिता। क्या करे? क्या न करे। किससे कहे मन की बात। बाप की अर्थी भी उठ चुकी है। ताऊ के लड़के नाराज हो नाता तोड़ चुके हैं। सास-ससुर प्यार से बोलते हैं, पर औरत को मर्द भी तो चाहिए। उदास मूक सी सरिता मकान के अहाते में उग आए नीम के पेड़ के नीचे बने चबूतरे पर बैठ जाती। जेठ की तपती दोपहर में लहकती रहती। बदन पसीने से नहा जाता मगर सरिता को पता नहीं चलता। तभी कोई आके कहता-''अन्दर चलो बहू रानी। एसी में आराम से लेटो।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''क्या करूँगी अंदर जाकर। ऐसी भभकती है।''

''भईया जी का हुकुम है कि आधा घंटे से ज्यादा बाहर न रहो।''

''मैं उनकी लुगाई हूँ। रखैल नहीं, जिसे चाहे जिधर हाँक दो।''

दूसरी नौकरानी आई। भारी भरकम देह के साथ आती और हुक्म देती-''चलो!''

नौकरानी की काया सरिता को कंपा देती। वह कमरे में आ जाती। शृंगार मेज पर सजे सामान को झपट्टे से फर्श पर गिरा देती। नौकरानी क्रुद्ध दृष्टि से देखती हुई, फिर उन्हें व्यवस्थित रख देती। सास से कहा मुँह खोलकर सरिता ने तो जवाब मिला-''जो आदमी को रिझा न सके वह क्या औरत है? तू तो भाग्यशाली है कि घर में नौकर-चाकर हैं। गेट पर दरबान है। खा-पी और ऐश कर। हुकुम उदूली की तो कमरे में बंद कर दी जायेगी और सड़ती रहेगी।''

विस्फटित सी सरिता सुन गई। सास से उसे हमदर्दी की उम्मीद थी, मगर समझ गई कि बेटे की वजह से उनका बुढ़ापा जो आराम से कट रहा है, सो क्यों समझेंगी मेरी पीड़ा।

एक दिन पुखराज समझाने लगा-''घर में खूब आराम से हो। कपड़ा, लत्ता और शृंगार की क्या कोई कमी है? सजो-धजो और हँसो-हँसाओ।''

''मन के साथ चलता है तन! सुना है तुम्हारे भाइया ने शहरी औरत रख रखी है। दो लड़के भी हैं उसके।''

पुखराज सुनकर चुप रहा तो बोली-''हाँ, उन्हें क्या संताप? संताप तो मेरे हिस्से है।''

''गाहे बगाहे भईया आते हैं। उनसे कहो जो कहना हो।''

''आते हैं और तब मुझे कमरे में बंद कर दिया जाता है।''

''फिर?'' पुखराज पूछता है।

बेशर्म हो गई सरिता-''तू मेरा बन जा। कानो कान खबर न होगी।''

पैंतीस की सरिता पैंतालीस की लगने लगी थी। पुखराज डपट के बोला-''मेरी घरवाली तुमसे बहुत सुंदर है। भईया ने ठीक समझा था तुम्हें कि तुम्हारी जीभ ही नहीं नीयत भी खराब है। सुनो, मेरी बात मानो और चुपचाप पड़ी रहो। मायका तो तुम्हारा कब से खत्म हो चुका है। जिस औरत की बोली कड़वी हो उसे कौन साथ रखेगा?''

''रात में औरत बोलती नहीं है। आदमी उसकी धड़कन सुनता है। तुम मर्द हो तो मेरी धड़कन भी सुनो।''

''छी! अमानत से खियानत सिखा रही हो। भईया ने फोन पर समझाने को कहा था सो आ गया।''

''तो नहीं मानोगे। थाने जाना पड़ेगा मुझे।''

''निकलोगी कैसे? चौकीदार ऐसे ही नहीं बिठा रखा है भईया ने। और पुलिस क्या मंत्री के खिलाफ रिपोर्ट लिखेगी?''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''सतपाल और दानवीर निकालेंगे मुझे ! वे ही रिपोर्ट दर्ज कराएंगे।''

''हँस पड़ा पुखराज, बाप को तो जेल से निकाल न सके वे निकालेंगे तुम्हें।'' हँसता हुआ पुखराज चला गया। फड़फड़ा रही सरिता।

ज्वाला सी जल उठती सरिता। कभी लगता कि तन जलता है तो कभी लगता कि तन ही नहीं मन भी जल रहा है। फड़फड़ाती चक्कर लगाती रहती कमरे में। कभी लगता कि वह देह नहीं मात्र आत्मा है। मगर आत्मा ऐसी कि जिसे शांति का घाट ही नहीं मिलता। कभी लगता कि वह मात्र मांस का लोथड़ा है, जिसमें भूख ही भूख भरी है। कभी मन करता कि जीभ करत डाले जिसकी वजह से वह रौख नर्क भोग रही है। कितने सपने सजाए थे उसने कि उंगलियों पर नचाएगी पति और उसके घरवालों को। मगर वह तो प्यास के सागर में न डबू पा रही है और न उबर पा रही है।

साल के अंत तक सास-ससुर भी नहीं रहे। लोकपालसिंह आए और चले गए। न तो शहरी घरवाली को लाए और न उसके बच्चों को। संस्कार से तेरहवीं तक का सारा इंतजाम पुखराज ने किया।

सूना हो गया सरिता का आकाश। अब घर की मालकिन थी वह। कभी खुद को विधवा और नि:संतान महसूस करती और कभी अरण्य से खुद को अकेला जानवर महसूस करती। एक दिन पंखे से लटक आत्महत्या का प्रयास भी किया, मगर विफल रहा। उसके बाद तो पुखराज ने पंखे ही निकलवा दिए।

चिरौरी कर उठी सरिता नौकर मलखान से-''मुझे संखिया ला दे। तेरा उपकार न भूलूँगी।''

''न मालकिन! अमानत में खयानत न कर सके मलखान। भईयाजी से बहुत मिल रहा है।ज्यादा की चाह नहीं है।''

रुआँसी सरिता बड़े से दर्पण के आगे खड़ी हो गई। यह महसूस किया कि पैंतालीस साल की अधेड़ उम्र में वह बूढ़ी हो गई है। वह उस खेत की तरह है, जिसमें फसल लहलहाई मगर कोई काटने नहीं आया। जानती है कि मलखान, पुखराज और अन्य चाकर सब लंगोट के ढीले हैं, मगर कोई भी उसके पास आने को तैयार नहीं है। क्यों? क्या वह इतनी बदसूरत थी कि पुरुष को लालायित न कर सके? नहीं! लोकपालसिंह की बेईमानी के हिस्सेदार बन गए थे सब। अब तो लोकपालसिंह ने अपनी अलग पार्टी बना ली है। केन्द्र की मिलीजुली सरकार से मंत्री है वह। एम.एल.ए. और कई एमपी उसकी पार्टी के हैं, दलित उद्धार की जगह अपनी जेबें भर रहे हैं सब! सब भाषणों में आता है दलित शब्द। वह औरत जो उसकी रखैल कही जानी चाहिए, उसकी पत्नी के रूप में जानी जाती है। कोई नहीं जानता है कि लोकपालसिंह की एक ब्याहता है, जो भूतिया महल में भूत की तरह जीती है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Heritage Portal Digitized by Sarayu Trust Foundation

रामरतन की बहन की शादी थी। मुखराम ने बड़ा सा गिफ्ट पैकिट देकर कहा-''सिर्फ दो घंटे रहोगी वहाँ। मलखान और किशोरी साथ जाएँगे। भईया के हुक्म से ही भेज रहा हूँ।''

''खूब बन-ठन के निकली सरिता। मगर महसूस हुआ कि वह ढल चुकी है। शानदार कपड़े भी उसकी ढलान को सम्भाल नहीं पा रहे हैं।''

घराती और बराती कोई भी उसकी ओर देख भी नहीं रहा है। गिफ्ट पैकिट पकड़ा कर स्टेज के पास कुर्सी पर बैठ गई। सोच रही थी कि गाँव कितना बदल गया है। ये कुर्सियाँ, ये स्टेज, ये बुफे सब कुछ शहर जैसे हो गए हैं। तभी कान में फुसफुसाहट गूँज उठी-''लोकपालसिंह की बीबी है ये।''

''इतनी बूढ़ी? मुँह तो मरी घोड़ी जैसा है। लोकपालसिंह को दो महीने पहले ही देखा है खूब जवान और सुंदर है। इतनी बूढ़ी और बदसूरत औरत के साथ कौन रह सकता था? तलाक क्यों नहीं दे दी इसे?''

फड़फड़ा उठी सरिता। दो घंटे की जगह आधा घंटे में लौट आई। सांसें तेज थीं। तभी किशोरी सामने आ गई-''क्या बनाएँ मालकिन?''

''मरी घोड़ी क्या खाती है, वही पका'' कहती सरिता कपड़े पहने ही बिस्तर पर बिखर उठी! मन उड़ता रहता है। याद आता है बचपन। इकलौती संतान होने की वजह से माँ-बाप लड़का ही मानते थे उसे अपना। माँ नहीं रहती तो भी बाप ने उस पर गृहस्थी का बोझ नहीं डाला। सपनों में डूबी रहती थी वह। खुद को मिटा के पिता ने एम.ए. लड़का खोजा जो देखने में भी छैल-छबीला थ। उसे लगा था कि अब सपने पूरे होने वाले हैं, मगर विधाता को यह मंजूर नहीं था। चंद रातों की ब्याहता को संतान रहित जीवन जीना पड़ा। मौत तक पास न फटकी। क्या मौत भी राजनीतिज्ञों की आश्रित हो गई है? कौन समझेगा इस राजनीतिक घरनाद में उसकी पीड़ा, उसकी दास्तान और ज़िंदगी का बेरहम सफर?

सरिता को लगता है कि उन्मादित भीड़ ने लोकपालसिंह को कंधो पर बैठा लिया है। भीड़ लोकपालसिंह की जय-जयकार कर रही है, जबकि विचार को लेकर शुरू हुई उनकी यात्रा विचार शून्य हो चुकी है। लोकपालसिंह सिर्फ पैसे की भाषा समझते हैं, फिर भी भीड़ उनकी जय-जयकार कर रही है। पास ही में घायल घोड़ी की तरह पड़ी वह हिनहिना रही है, मगर कोई सुनता और देखता नहीं है। सब मरी घोड़ी की तरह उसे फलांग जय-जयकार में शामिल होने बढ़ जाते हैं।

बी-106, ए.टी.एस.ग्रीन-1
सेक्टर-50, नोएडा-201303

CC-0 Agrawnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पड़ौसी

■ *भवानी सिंह*

आदमी की फितरत भी अजीब है। हमेशा और पाने के लिए दौड़ता रहता है आदमी। जो मिला हुआ है, उसमें संतुष्ट होना कतई नहीं चाहता। कई दिनों बाद आज पत्नी की अंगुलियाँ मेरे सिर के बालों में घूम रही थी। मैं घबरा उठा था। शायद नए मकान में आने के बाद पहली बार हुआ हो ऐसा। क्या चाहिए इसे आज?

'सुनो जी, एक कार तो चाहिए ही चाहिए।'

'क्या मतलब... ये अचानक कार कहाँ से आ गई।'

'सभी कार वाले ठहरे पड़ौसी। मुई कॉलोनी ही कार वालों की ठहरी। मुझे कुछ बुरा-बुरा सा लगता है।'

'तुझे सब मालूम है। मकान की किश्त जाने के बाद बची तनख्वाह में घर चलाना मुश्किल हो रहा है। ऐसे में कार की किश्तें कहाँ से भरी जाएँगी। सोचा तूने।'

'पुरानी भी चलेगी।'

'पर चलाएगा कौन?'

'आप चलाना... और चलाएगा कौन...?'

'मुझे साइकिल तो चलानी आती नहीं, साइकिल आती तो स्कूटर नहीं चला लेता। पप्पू के बाहर जाने के बाद स्कूटर खड़ा ही रहता था। ये तो अब बच्चे चलाने लगे हैं।'

'गाड़ी चलाओगे आप, मुझे पता है, आपको स्कूटर से गिरने का डर लगता था न... गाड़ी से नहीं गिरते हैं।'

'वाह भाई, गिरते नहीं है, पर कॉन्फीडेंस तो चाहिए न, वह मुझमें नहीं है। टकरा मारूँगा किसी को या खुद मर जाऊँगा।'

'तो ठीक है, फिर मैं सीख लूँगी। खर्चा नहीं चलेगा, तो स्कूल फिर से पकड़ लूँगी। पर मुझे गाड़ी चाहिए ही चाहिए।'

उसने अपना सिर छाती पर रख सिसकना शुरू कर दिया था। अब मुझे गाड़ी के लिए सोचना जरूरी हो गया था। अब बिना गाड़ी के पत्नी मुझे चैन नहीं लेने देगी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैं सोचता ही चला गया था... अच्छा खासा मकान था हमारा। बिल्कुल टोंक रोड से सटा हुआ। पर नहीं रह सके वहाँ। पाँच वर्ष मुश्किल से काटे।

'सुनो जी अब और नहीं रह सकते हम यहाँ। कैसे पड़ौसी हैं, यहाँ गली के मुहाने पर आते ही भीड़ ही भीड़ दिखाई देती है। ऐसा लगता है मानों कहीं मेले में तो नहीं आ गए। दिनभर पड़ोसिनें जमी रहती हैं घर में।'

'मैंने मना नहीं किया था... अपने काम से काम रख ... पर तुझे चैन कहाँ ... अचार बनाना ... बढ़िया बनाना... सिलाई के गुर ... बिना पड़ौसियों को बताए तुझे चैन कहाँ... अब झेल तू ही।'

'ये मोहल्ला मुझे जँचता नहीं है। सब के सब गरीब-गुरबे... बच्चों के पास ढंग के कपड़े तक नहीं। मैं नहीं रह सकती इनमें।'

'क्या-क्या फिर डीवाईएसपी की पत्नी और तुझमें अन्तर कहाँ रहा... तू तो बड़ी बुराई करती फिरती थी उसकी।'

'माया जी घर तो बड़े ही लाड़-प्यार से बनवाया था। पर मुझे क्या पता था पड़ौस में सब फटीचर ही फटीचर रहने लगेंगे। सुबह-सुबह मनहूसों का चेहरा देख लो, तो रोटी भी नसीब नहीं हो। इसलिए लाड़-प्यार से बनवाया मकान खाली कर वापस सरकारी मकान में चली गई।'

'भाभी जी हमें मकान चाहिए था। अहोभाग्य हमारे आप नहीं जाते, तो मकान कहाँ से मिलता हमें।'

मकान किराए के प्रयोजन से तो डीवाईएसपी ने बनवाया नहीं था। हमारा काम दो कमरों और रसोई में चल सकता था। डीवाईएसपी के पास पैसों की कमी तो थी नहीं। कोई मकान की देखभाल करने वाला मिल जाए। हमें पीछे के दो कमरे दे दिए गए थे। बगल की रसोई। बाकी सब उन्होंने अपने पास ही रखा था। घर की सफाई आदि का ध्यान हमें ही रखना था। किराया, बिजली का बिल, साफ-सफाई पत्नी कर ली लेती थी। छोटे भाई की अच्छी स्कूलिंग करानी थी। सो गाँव से जयपुर ट्रांसफर करा लिया था। घर खर्च नहीं खिंचता देख पत्नी ने पड़ौस की स्कूल में काम करना शुरू कर दिया था। घर जैसे-तैसे चल रहा था। पप्पू पढ़ रहा था।

इसी बीच बच्चे भी आ गए थे। पप्पू के लिए स्कूटर भी लेना पड़ा था। यहाँ से यूनिवर्सिटी के लिए बस नहीं जाती थी। वह साइकिल से परेशान हो जाता था।

डीवाईएसपी की बीबी महीने में दो बार घर को संभालने जरूर आती थी पर आती तब ही जब पत्नी की छुट्टी रहती। वह भी झेलती थी उसकी डींगें... मेरे बस की बात कहाँ?

उसके जाने के बाद... पत्नी वह वाक्य जरूर सुनाती। कैसे पड़ौसी हैं, आ जाते हैं सुबह-सुबह मनहूसों का मुँह देख लो, तो रोटी भी नसीब ना हो।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'अब तो खूब खाना मिलता होगा उसे... वहाँ सरकारी कॉलोनी में फटीचर कहाँ?'

'हाँ जब ही तो मुटल्ली होती जा रही है। देखा नहीं बूढ़ी लगने लगी है।'

'उमर ढलेगी तो बुढ़ाएगी तो सही... पर अभी भी जँचती है। तू फीकी लगने लगती है उसके पास में।'

'क्या कहा, हूँ तो मैं भी कहूँ आजकल जनाव क्यों इन्ट्रेस्ट लेने लगे हैं भाभीजी में... तो तुम्हें भाभीजी की फिगर लुभाने लगी है... मुटल्ली कहीं की... माई फुट...।'

बस वह दिन था और पीछे पड़ गई थी श्रीमती जी। साफ-साफ कह डाला था।

'मुझे अपना मकान चाहिए, चाहे जैसे भी करो...।'

'क्यों, क्या पड़ौसी फटीचर लगने लगे हैं तुझे भी।'

'नहीं, ऐसा नहीं है। पप्पू ने भी पढ़-लिखकर नौकरी पकड़ ली है। कुछ न कुछ हमें दे ही रहा है। वैसे भी अच्छा कमा रहा है। देता ही रहेगा।'

'देख ले इन फटीचरों के बीच ही मिल सकता है अपना मकान।'

'मैंने तो कभी फटीचर नहीं कहा इन्हें। आपकी प्रिय भाभीजी ही बुलाती हैं फटीचर।'

पप्पू से बात की तो वह भी मान गया था। 'हाँ, भैया मकान तो अपना चाहिए ही अब। बच्चे बड़े हो रहे हैं। आस-पास अच्छा स्कूल भी नहीं है। इन्हें भी तो पढ़ाना है।'

'पप्पू मकान भी चाहिए और बच्चों को अच्छी स्कूल भी... ये सब कैसे होगा?'

'आप होने की चिन्ता मत करो भैया... सब ठीक हो जाएगा। अब इस घर में दो कमाने वाले हैं।'

'दो क्यों तीन क्यों नहीं...मेरी कमाई को तो तुम दोनों कमाई नहीं मानते। मैं नहीं कमाती तो पढ़ लिए थे तुम, इनकी कमाई से तो...।' पत्नी तुनक गई थी।

'भाभी अब आपको काम छोड़ देना है। बस दोनों बच्चों को पढ़ाना है और एक नया मकान चाहिए। बच्चों को अच्छे स्कूल में डालना है। आपकी स्कूल की छुट्टी।'

सोसाइटी में ही एग्रीकल्चर लैण्ड खरीदकर मकान बना लिया था। मकान टोंक रोड़ पर था। पास में ठीक ठाक ढंग की स्कूल भी मिल गई थी। पम्पू ने अच्छा सहारा दिया था। बच्चे फल फूल रहे थे।

पाँच साल भी नहीं बीते थे कि पत्नी को पड़ोसी फटीचर लगने लगे थे। हमारी वाली गली में सभी गरीब-गुरबे आ बसे थे। जमीन दस रुपए वर्ग गज में खरीद ली थी। खुद ने मेहनत मजदूरी कर एक-एक दो-दो कमरे भी खड़े कर लिए थे। कुल मिलाकर हमारी गली का नया लुक फटीचर बनकर रह गया था।

'तू भी यार मजे ही लेती है। दस साल पिछले मुहल्ले में फटीचरों में रह आयी। पाँच यहाँ कट गए। फिर आमदनी अपनी भी कोई धन्ना सेठी वाली नहीं है।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'नहीं- नहीं मैं अब नहीं रहने की यहाँ।'

'तो इसको बेचकर नया ले लेते हैं। पास की कॉलीनी मैं।'

'बेचकर क्यों...पप्पू को दे देते हैं। इसे। नए मकान के लिए आसानी से सहायता भी देगा वह।'

'बडी समझदार हो गई है तू तो...पप्पू कभी तो तुझे बहुत प्यारा लगता है। कभी देखना भी पसन्द नहीं करती।'

'ऐसी बात क्यों करते हैं आप....कब नहीं चाहा पप्पू को... बच्चों की तरह तो रखा है।'

'वह तो ठीक है, इसमें कोई शक नहीं है। पर अब पप्पू अकेला नहीं है। पत्नी आ गई है उसकी। सहयोग करने दे या नहीं।'

'क्यों नहीं करने देगी सहयोग, पुराना मकान नहीं दे रहे पप्पू को। बदले में कु छ ले थोड़े ही रहे हैं। बस सहायता ही तो मांग रहे हैं। कल हमारे बच्चे बड़े होंगे और कमाने लगेंगे तो हम भी सहायता कर देंगे पप्पू की।'

पप्पू ने नए मकान के लिए आधे पैसों का जुगाड़ कर दिया था। आधे भी एक साथी से कुछ लोन तथा बीमा लोन जुटाकर जमीन खरीद ली थी। बैंक से पाँच लाख का कर्ज उठा लिया था। मकान थोड़ी परेशानी के बाद बन गया था। रहने भी लगे थे। मकान गली के आखिर में था। ऊँहू मजा नहीं आया। कहाँ आखिर में आकर पड़ गए। पत्नी बीच-बीच में टेरती रहती।

'क्यों अपने पीछे देख और आगे देख। सभी आखिरी मकानों में रह ही रहा है कोई ना कोई।'

'वह तो ठीक है पर हम सड़क पर क्यों न रहें।'

'मुझे लगता है तू मकान के चक्कर में मुझे सड़क पर ला खड़ा करेगी एक दिन।'

जमीनों के भाव दिन दूने रात चौगूने बढ़ रहे थे। बिल्डर खाली जमीनें खरीद-खरीद कर मकान बना बनाकर भारी मुनाफे में बेच रहे थे। समाने खाली पड़ा गली का आखिरी प्लॉट भी बिक गया था। एक बिल्डर ने दो मकान बनाकर 15-15 लाख में बेच दिए थे। बस सामने के प्लाट में मकान बनना था और पत्नी की यह सोच छू मन्तर हो गई कि हम कोने कचोने में रह रहे हैं। गली के आखिरी मकान में रह रहे हैं।

सामने के दोनों मकानों में मालिक लोग रहने को भी आ गए थे।

'लो जी ये पड़ोसी भी गली जैसे ही निकले, ना बोले-ना चाले। बस अपने में ही बन्द...आते जाते कभी मिल गए तो हाय-हैलो हो गई, नहीं तो जय राम जी की।'

'यार तेरा भी जवाब नहीं। पिछले घर लौट चलते हैं। वहाँ तू पड़ोसियों के घर में जमें

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
रहने से परेशान रहती थी। यहाँ उनके नहीं बोलने से। मैं तो वहाँ भी आराम से था यहाँ और भी आराम से...।'

सामने के एक मकान में ऊपर के पोरशन में किराएदार भी आ गए थे। पोर्च में एक ही कार खड़ी हो सकती थी। किराएदार कार सहित आए थे। दोनों पत्नी से बोल बतिया भी रहे थे। पत्नी की ना बोलने बतियाने की शिकायत भी दूर हो गई थी।

छ: महीने ही निकले थे कि सामने के किराएदार पुरानी बेचकर नई गाड़ी ले आये थे। पत्नी को भी नयी गाड़ी में घुमाया था।

मैं अन्दर आराम कर रहा था। पत्नी बाहर दोनों मियां बीबी से बतिया रही थी। नई कार को हमारे पोर्च में खड़ी करने की बात हो रही थी। आगे आपके स्कूटर खड़े रहेगे, मैं बाद में गाड़ी खड़ी किया करूंगा और सुबह बाहर लगा दूँगा। बच्चों को स्कूटर निकालने में भी परेशारी नहीं होगी। किराएदार बोल रहा था।

मेरे से बात नहीं हुई थी। तो वे सुबह इस बारे में मेरे से बात करने आ गए थे। दोनों मियाँ बीबी साथ थे। वे मुझे पता नहीं भाईसाहब क्यों सम्बोधित कर रहे थे। जबकि पत्नी को आंटीजी बुलाते थे।

पत्नी भी आ गई थी।' भई मुझे तो कोई आपत्ति नहीं है इनसे और पूछ लो।'

'आंटी से तो रात को भी बात हो गई थी। भाई साहब आज से खड़ी कर दिया करेंगे गाड़ी ।' वे लौट गए थे। मैं कुछ समझा नहीं था।

'क्या कर रही थी यह औरत...आपको भाई साहब कह रही थी और मुझे आंटी।'

'यार अपनी काया को तो देख मुटा गई है तू। आंटी ही लगती है। मुझे देख स्लिम और दुबला पतला...बाल भी डाई करके रखता हूँ..जवान आदमी को भाई साहब ही कहेगी। और मैं कहने तो गया नहीं था उससे कि मुझे भाई साहब कहे और तुझे आंटी। पर यार मानना पड़ेगा क्या मूरत घड़ी है भगवान जी ने भी। फुरसत में बैठ कर घड़ी है।'

'ओह तो अब समझी मैं जनाब क्यों उनकी कार खड़ी करवाना चाह रहे हैं अपने घर में। ताकि भगवान जी की मूरत को रोज निरख सके। मैं मना कर दूँगी। हमारे जगह नहीं बचेगी आने जाने के लिए...आपकी गाड़ी खड़ी करने के बाद। कोई और इंतजाम करो।'

'तू तो कल शाम को ही हाँ कर चुकी थी।'

'खूबसूरत मूरत कह रही थी आंटी तो हाँ कर चुकी है कल शाम ही, पर आपसे भी तो पूछना जरूरी था।' मैंने पत्नी की नकल उतारी थी। पत्नी चिढ़ गई थी।

'तो ठीक है फिर आंटी आज शाम ही मना कर देगी। तेरे अंकल जी ने मना कर दिया है। तुम्हारे सामने तो बोलने की हिम्मत पड़ी नहीं।'

देर रात भी गाड़ी बाहर ही खड़ी देखी तो छत पर घूमते समय पूछा पत्नी से 'क्या बात हुई पड़ोसी घूम भी नहीं रहे छत पर...गाड़ी खड़ी करने वाले थे, वह भी नहीं की।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'अच्छा-अच्छा... रोज माथा पच्ची करती थी छत पर घूमने को तो भी नहीं आते थे। आजकल बिना कुछ कहे सुने कैसे आने लगे हैं घूमनें। भगवान जी की मूरत बुला रही दिखती है। मैंने शाम को ही मना कर दिया था। वह दूध लेकर आ रही थी। मैं लेने जा रही थी। साफ-साफ मना कर दिया मैंने-वो आपके अंकल ने मना कर दिया है गाड़ी खड़ी करने से। आपको तो नहीं बोल पाए। मुझे कह दिया है मैं कह दूँ। भई अभी-अभी तो मकान बनाया है घर में नई गाड़ी देंखेंगे तो ऑफिस वालों को जलन होने लगेगी। शिकायत कर देंगे। बे मतलब सतर्कता विभाग की आँख की किरकिरी बन जाएंगे।'

'अच्छा-अच्छा समझी...कोई बात नहीं आंटी...ये तो मकान बदलने की सोच ही रहे थे। फिर मैंने ही कहा कितने भले पड़ोसी मिले हैं संयोग से...अपनी गाड़ी भी खड़ी करने दे रहे हैं। भाई साहब तो आंटी जी से भी ज्यादा अच्छे और मिलनसार हैं।'

'अच्छे और मिलनसार हैं माई फुट। चुप्पा और कुना आदमी कब से मिलनसार हो गया। भगवान जी की मूरत से नैना दो-चार करने को हो रहा है यह सब।'

'तू भी यार क्या-क्या ऊट-पटांग सोचती है। मेरी और उसकी उमर में 15-20 बरस का अन्तर है। उसका आदमी सुन्दर और जवान है।'

'नहीं नहीं मैं इस चक्कर में नहीं आने की। प्यार उमर नहीं देखता।'

'अब चुप भी कर कहाँ से कहाँ पहुंच जाती है तू भी।'

'नहीं नहीं इतनी भोली नहीं हूँ मैं...इस वहम में मत रहना...मैं सब समझती हूँ...जब से यह आए हैं। कैसें मिया चुपचाप छत पर घूमने लगे हैं घन्टे-घन्टे भर।'

'भई तेरा भी जवाब नहीं। खुद ही तो पीछे पड़ी रहती है नहीं घुमोगे तो बीपी और डाईबिटीज के शिकार हो जाओगे। पैंतालीस पार कर गए हो। अब खुद ही पीछे पड़ी है।'

तुनक गई थी पत्नी और हम नीचे आ गए थे। दो-तीन दिन अबोला रहा था। पत्नी मेरी गतिविधियों पर ध्यान दे रही थी। जबकि ऐसा कुछ था ही नहीं।

महीने भर बाद कार वाले पड़ोसी किराएदारों ने मकान बदल लिया था। मैं ऊपर घूम रहा था यों ही पूछ लिया था 'क्या बात है सामने अन्धेरा है, कार भी नहीं है।'

'वे मकान खाली कर गए हैं। मुझे कह कर गई थी भगवान जी की मूरत कि भाईसाहब से मैं बता दूँ।'

'तूने भी यार अच्छा दिमाग पाया है। दिन-रात इन बेकार और टुच्ची बातों पर ही सोचती रहती है।'

बात आई गई हो गई थी। दो-तीन रोज से नई नीली गाड़ी सामने खड़ी देख रहा था।

'क्या बात है, क्या पड़ोसी नई गाड़ी ले आए।'

'पड़ोस कहाँ...नया किराएदार आ गया है...उसकी है। दिन भर गाड़ी साफ करने में ही लगा रहता है। औरत भी नहीं है साथ कोई। शक्ल से तो टैक्सी ड्राईवर लगता है।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'हाँ तो होगी टैक्सी वाली। कार को टैक्सी में चलाता होगा।'

'आप भी मजे ही लेते हैं। उसके बच्चे एम.जी.डी. में जा रहे हैं। नई गाड़ी ले रखी है। तीन हजार में मकान किराए पर लिया है। टैक्सी ड्राइवर भला इतना करेगा।'

'होगा कोई भी यार, हमें क्या।'

सुबह मैंने उसे देखा था। लम्बा चौड़ा आदमी....शकल हब्शी जैसी रंग भी हब्शी जैसा।

छत पर घूमते समय पत्नी बोली थी। यह भी कॉलोनी की गली का ही कोई सगा लगता है। किसी से नहीं बोलता है। बस या तो बाहर रहता है या यहाँ रहता है तो छत पर खड़ा-खड़ा हमारे घर की ओर ताकता रहता है। या गाड़ी की साफ सफाई में।

'तेरी यह परेशानी अपनी समझ से बाहर है। वहाँ आराम से अपने जैसों मे रह रहे थे। मुहल्ला भी भरा-भरा सा लगता था। तुझे नहीं जंचा। यहाँ आ गए वीराने में। ना किसी से कोई बोले ना बतियाए। पॉश कॉलोनी कहते है इसे या मुरदा कॉलोनी। हमारी तो समझ में नहीं आता। पर अपने राम तो वहाँ भी मस्त थे यहाँ भी मस्त। तेरी परेशानी, तू जाने।' और पत्नी खिसिया कर नीचे उतर आई थी।

रात को बोली थी-'सुनो जी यह कैसा आदमी है कार में ही जीता है काम क्या करता है पता नहीं। 12 बजे तक तो यहीं रहता है फिर इसके बच्चों की बस आती है सामने। बच्चों के जाने के बाद यह निकलता है। 4 बजे फिर आ धमकता है। आने के बाद फिर कार की सफाई। रात को भी देखती हूँ तो कार को ही देखता मिलता है।'

'यार इसकी कार खड़ी करने की समस्या होगी। नई गाड़ी है। कहीं चोरी नहीं चली जाए इसलिए रात को उठ-उठ कर देखता होगा।'

'पर हमारी ओर क्यों ताकता रहता है। समझी नहीं मैं। कुछ बोलता भी नहीं।'

'वही परेशानी होगी अपना पोर्च खाली दिखता होगा सो सोचता होगा क्यों ना सामने वाले मकान में खड़ी कर दूं कार। बात करने की हिम्मत नहीं होती होगी बेचारे की।'

'जो भी हो, यह आदमी अपनी कार से कुछ ज्यादा ही प्यार करता है।'

'अरे तो करने दे, अपना क्या लेता है।'

'सो तो है, मैं तो सोच रही थी यह तो कॉलीनी ही कार वालों की है। साले किराएदार भी कार रखते हैं। एक हम ही है जो कार तो दूर, स्कूटर भी खटारा रखते है।'

'जब कॉलोनी वाले तेरे बारे में नहीं सोचते, तो तू हमेशा क्यों कॉलोनी वालों के बारे में सोचती रहती है।'

'इसलिए तो सोचती हूँ कॉलोनी वाले अपने से बात क्यों नहीं करते। सबके पास गाड़िया है। एक हम ही बिना गाड़ी वाले हैं। सुनो जी ये कॉलोनी वाले हमें इसी नाम से पुकारते होंगे जब आपस में बात करते होंगे-बिना गाड़ी वाले...।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'क्यों खटारा स्कूटर वाले नहीं पुकारते होंगे।'

'इसलिए तो कहती हूँ खरीद लो एक कार, चाहे पुरानी ही क्यों ना हो। मैंने पप्पू से आज ही बात की थी। कह रहा था अच्छी मारुती तीस-चालीस हजार से मिल जाती है।'

'अरे तो तीस-चालीस भी तो कहीं से हों।'

'वही तो मैं भी सोचती हूँ इसलिए ही तो आपको नहीं कहती गाड़ी के लिए पर ये कॉलोनी वाले हमारे बारे में क्या सोचते होंगे।'

और आज तो माया ने कमाल ही कर दिया था। मैं दफ्तर में दिन भर कार के बारे में ही सोचता रहा था। पड़ोसी बाबू से पूछा भी था यार ये सैकण्ड हैण्ड कार कितने में आती होगी।

'क्यों चाहिए क्या। मेरा एक जानकार दलाल है। बोल देना। अच्छी गाड़ी दिला देगा। चिटिंग नहीं करेगा।'

'यार भल्ला, तू भी खूब आदमी है। दलाल और चिटिंग नहीं करेगा।'

'हां यार नहीं करेगा चिटिंग, मेरा जानकार है यार फिर गाड़ियों के बारे में मेरा भी तजुर्बा अच्छा है बता देना कब चाहिए गाड़ी। मैं भी ध्यान में निकालता हूँ।'

दोपहर में फोन आया था घर से। मैं घूमने निकल गया था। फोन लगाया घर तो माया थी।

'क्या बात है फोन क्यों किया था।'

'यों ही कर लिया था। पप्पू का फोन आया था कह रहा था नई गाड़ी खरीदें, कह देना भैया से। पचास वह अभी दे देगा। और किस्त के लिए भी कह रहा था। पुराने वाले मकान को किराए पर चढ़ा दो। कुछ वह भी कर दिया करेगा। फिर भी किस्त नहीं निकलेगी तो मैं कोई स्कूल फिर से पकड़ लूंगी।'

'पागल तो नहीं हो गई है माया, रात दिन कार कार। हमें नहीं चाहिए कोई कार-वार।'

'क्या बात थी?' जुनेजा ने पूछा। 'महीनों बाद तेरा फोन आया है घर से। बता तो भाई।'

'कुछ नहीं यार, तेरी भाभी का दिमाग फिर गया है। कार चाहिए, वह भी नई।'

'तो फिर आज ही चलते हैं छुट्टी के बाद। मेरा एक जानकार एजेन्ट है। कार दिलाता है लोन पर। 36किस्तों में, 60 किस्तों में भी। चलेंगे शाम को ही।'

'चलना ही पड़ेगा यार जुनेजा।'

'तो आखिर आ ही गया प्यारे तू भी जमाने के चक्कर में।'

85, गायत्री नगर-ए, महारानी फार्म
दुर्गापुरा, जयपुर-302018

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुछ और नहीं

■ *भगवान अटलानी*

पिछले तीन दिनों में यह प्रश्न दूसरी बार खड़ा किया गया है, उसके सामने। सच है कि अचेतन-चेतन में जानी-अनजानी दस्तकों, थपकियों, शंकाओं, संभावनाओं, दहशतों, चिंताओं, दुश्चिन्ताओं की कन्दराओं से अंधेरे-उजो कभी सिर निकालकर झांकता और कभी पूरे आकार में झलक दिखाकर गुम होता यह प्रश्न अहसास के स्तर पर उसके साथ बना रहा है। मृत्यु की कड़वी संभावना की तरह आतंकित करती परछाइयां अनागत की परिकल्पना के गुदगुदे, गर्म लिहाफ में दुबककर आश्वस्त हो जाती रही हैं। अप्रिय का विचार सतह से ही स्थगित करने की चेष्टा में पेड़ की टहनियों की तरह काट-पीटकर फेंक देने जैसा सलूक इस प्रश्न के साथ कई बार हुआ है। किंतु टहनियों की टूटन जिस तरह पेड़ के अस्तित्व के लिये खतरा नहीं होती, उसी तरह यह प्रश्न भी अपनी जड़ के साथ बना रहा है। भले ही अधिक फैल न पाया हो और इसलिए मन के किसी कोने में आतुरता भी पैदा न कर पाया हो, किंतु सीधे तौर पर पूछे जाने के बाद विकराल रूप धारण करके उसके सामने आना इस बात का प्रमाण था कि वह समूल नष्ट नहीं हुआ था।

जसविन्दर ने जब पूछा तब कोई ठोस कारण नहीं था कि इस प्रश्न को वह पूछती ही या कि इस समय को पूछे बिना उसका कोई काम रुकता हो या कि समय की गंभीर मांग बनाकर यह प्रश्न उसके होंठों से थरथराता हुआ निकला हो या कि यह प्रश्न उसकी किसी आकूल जिज्ञासा का परिणाम रहा हो। अखबार में परिचर्चा देखी, शायद उसे शब्दशः पढ़ा भी नहीं और समान रुचि का विषय होने के कारण केवल पूछने के लिये उसने पूछ लिया- "क्या हमें भी कभी यह शहर छोड़कर पंजाब जाना पड़ेगा?"

जसविन्दर के प्रश्न ने एक बार तो उसे अंदर तक पैठती, आकाश से एकाएक टूटकर गिरी बिजली की टेढ़ी-मेढ़ी लकीर की तरह जलजले से भर दिया था। मगर जसविन्दर के चेहरे पर छितरी बेफिक्री और लापरवाही देखकर पहले झटके में अंदर तक कौंधती अनुभव होने वाली बिजली की लपट गुनगुनी गरमाहट में बदल गई थी। ऐसी और इतनी

Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
गरमाहट कि जिसे बहुत मजे से दरगुजर किया जा सकता है। वह मुस्कुरा दिया था, इस अंदाज में जैसे कि कह रहा हो, 'झल्ली'!

जसविन्दर ने न किसी खास वजह से यह सवाल पूछा था और न उसे किसी खास या आम जवाब की जरूरत थी। उसकी मुस्कुराहट के जवाब में वह भी मुस्कुरा दी थी और अखबार को एक तरफ रखकर उसकी तरफ देखती हुई कुछ इस तरह उठ गई थी जैसे कह रही हो, 'तुम हो तो मुझे क्या चिंता!'

जिम्मेदारी का अहसास पहले भी था, किंतु जिस आस्था को उंडेलती जसविन्दर चली गई थी, उसे लगा था कि वह बोझ उसके बूते से ज्यादा है। उसकी हैसियत सौ किलोग्राम वजन उठाने वाले भारोत्तोलक की तो है लेकिन जसविन्दर की आस्था का वजन सौ किलोग्राम से कहीं ज्यादा है। वह अभ्यास करता, वजन बढ़ाते-बढ़ाते इतनी क्षमता अर्जित करता कि जसविन्दर के विश्वास को वहन कर सके और भरभराकर गिरे नहीं, इससे पहले की कोहली साहब ने वही सवाल दोहरा दिया था।

भूमिका और गंभीरता की धार ने जसविन्दर के मूल सवाल को कोहली साहब की समुद्र में गहरे गोता मारती आवाज के साथ मिलकर इतना पैना कर दिया था कि उसकी छऊअन से वह सिहर उठा था। कार भेंट के नाम पर कमाई का दसवां हिस्सा देते लोग। कमाई का तखमीना लगाने के लिए कारिन्दों की अधिकृत नियुक्तियां। कार भेंट देने वालों की सुरक्षा की समुचित व्यवस्था। पवित्र ग्रंथ साहब की मंजीसाहब में लगी आग की प्रतिक्रिया में लाखों लोगों का विरोध प्रदर्शन। समाचार पत्रों के लिये एकतरफा आचार संहिता, हिंदी में विज्ञापनों पर प्रतिबंध की घोषणा। सरकारी फाइलों में गुरमुखी में नोटिंग। खालिस्तान के करैन्सी नोट। खालिस्तान के पासपोर्ट। खालिस्तान की सत्ता का अहसास कराते कैसेट। अनेक देशों में समर्थन के दावे। राजनयिक संबंधों के प्रमाण। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर गठबंधन के मसविदे। पंजाब से ताजा घूमकर लौटे कोहली साहब ने खालिस्तान के अस्तित्व को अपने आसपास महसूस करते हुए चिंतातुर होकर पूछा था, 'क्या हमें भी कभी यह शहर छोड़कर पंजाब जाना पड़ेगा?'

ठंडे पसीने का एक रेला उसकी रीढ़ की हड्डी में से उतरता चला गया था। जसविन्दर के इसी प्रश्न के प्रत्युत्तर में जिस तरह की मुस्कुराहट उसके होंठों पर और जसविन्दर के लिये जो सम्बोधन उसके जेहन में उभरा था, उसकी क्षीण स्मृति भी कहीं नहीं थी। एक धड़धड़ाहट थी। शोर था। चीत्कारें थीं। उथल-पुथल थी। भूकम्प था और था नश्तरों का एक जंगल जिसमें तीखी नोकों के अलावा कुछ नहीं था। एक नश्तर। पंजाब से कई गुना बड़ा हिस्सा है इस देश का, जिसमें सितारों की तरह खालसा टंका हुआ है। दूसरा नश्तर। खालिस्तान की मांग हर खालसे को अपने-अपने आसमान में अलहदगी का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
अपराधबोध कराता है। तीसरा नश्तर। खालिस्तान की सच क्या खालसे को निर्जीव और विखण्डित उल्का में नहीं बदल देगा? चौथा नश्तर। सितारों की मानिन्द अपने हिस्से के आसमान में सुकून से पलकें झपकाता खालसा रोजी, रोटी, जमीन से टूटकर खालिस्तान नाम की पराई, अपरिचित मिट्टी में जड़ें जमाने की कोशिश में क्या सूखकर बिखर नहीं जायेगा? पांचवां नश्तर, छठा नश्तर, सातवां नश्तर...।

सिर उठाकर उसने सामने देखा। एक पागल नदी थी, एक सैलाब था जिसमें फंसे निरीह प्राणी ही तरह कोहली साहब किंकर्तव्यविमूढ़ मुद्रा में उसे निर्निमेष देख रहे थे। एक चिंताग्रस्त मासूम बच्चे की तरह भोलापन और असमंजस उनकी आंखों में था। उसकी इच्छा हुई, वह कोहली साहब के भीतर बैठे बच्चे के सिर को अपने सीने से लगाकर उन्हें आश्वस्त करे। उसकी यह भी इच्छा हुई कि प्रौढ़ हो चले कोहली साहब से पूछे कि क्या खालसे और मोने के बजाय एक इंसान की तरह नहीं सोचा जा सकता?

उसने कोहली साहब के सिर को सीने से लगाकर न उन्हें तसल्ली दी और न कोई सवाल पूछा। मगर उसे लगा कि अभी कुछ समय पहले तक चलने वाले झंझावत अब शांत समीर में बदलने लगे हैं।

डी-183, मालवीय नगर
जयपुर-302017

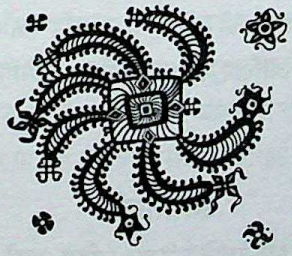

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दो लघुकथाएँ

■ *पूरणसिंह*

खोज

घण्टाघर मार्केट के बाईं ओर भव्य शिव मंदिर को कुछ आतंकवादियों ने देखते ही देखते खण्डहर में बदल दिया था। उस दिन भगवान शंकर का तीसरा नेत्र नहीं खुला था।

घटना का आज तीसरा दिन था। पिछले दो दिनों में न जाने कितनी छोटी-मोटी मस्जिदें और मंदिरों के गुम्मद टूटे थे, कितने मुसलमान और हिंदू मारे गए थे कोई नहीं जानता था। लेकिन घटना को अंजाम देने वालों की खोज पुलिस वाले नहीं लगा पाए थे।

राज्य के आई जी साहब ने प्रेस कान्फ्रेंस बुलाई थी।

सर, कब पकड़े जाएंगे, आतंकवादी। कैमरा लटकाए, माइक हाथ में लिए मीडियाकर्मी गुस्से में थे।

''हम कोशिश कर रहे हैं।'' आई जी साहब शर्मशार थे।

''कोशिश मींस व्हाट सर।''

''वी आर डूइँग व्हाट केन बी पासीबल।''

तभी पीछे दूर खड़ा एक अन्य मीडियाकर्मी चिल्लाया था, ''सर किसी को भी, आइ मीन किसी पंचर-वंचर जोड़ने वाले को आतंवादी बनाकर पेश कर दो...।''

आइ जी साहब सन्न थे। आखिर मीडियाकर्मी का दिमाग एक आइ पी एस अधिकार के बराबर कैसे हो गया।

आततायी

गर्मियों की छुट्टियाँ थी। मैं अपने परिवार सहित अपने मित्र धम्मरत्न के घर पहुँच गया था। धम्मरत्न बैंक में वरिष्ठ प्रबंधक है। मेरे पहुंचने पर खुशी से नाचने लगा था।

''यार तूने अभी तक धर्म नहीं बदला।'' वह मुझसे शाम की चाय पीते समय बोला था।

''नहीं यार! बौद्ध धर्म का मार्ग सचमुच बहुत कठिन है। हाँ कोशिश करता हूँ,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
जितना संभव हो भगवान तथागत के बनाए रास्ते पर चल सकूँ।'' मैंने असमर्थता जतायी थी।

''क्या यार! मुझे देख पक्का बुद्धिस्ठ हूँ। यहाँ के सभी लोग मुझे सम्मान से देखते हैं।'' वह आगे बोला था।

मैं चुप था।

''अच्छा एक काम करते हैं। कल सुबह संकिसा चलते हैं। वहाँ भगवान बुद्ध ने वर्षाकाल में कुछ समय के लिए विश्राम किया था।'' उसने अगले दिन का कार्यक्रम तैयार कर लिया था और मैंने हाँ कर दी थी।

दूसरे दिन सुबह ही उसने अपनी स्कार्पियो निकाली जिसमें हम दोनों के परिवार सहित हम भगवान तथागत के पवित्र स्थल संकिसा के लिए चल दिए थे।

दो घण्टे की ड्राइविंग के बाद, हम सभी वहाँ थे। उस पवित्र स्थल की पवित्र मिट्टी को सिर पर लगाकर हम वहाँ, उस टीले पर चढ़ गए थे जहाँ भगवान तथागत रूके थे। आततायियों ने वहाँ अपने छोटे-छोटे मंदिर जिनमें, काली माँ-शंकर जी और न जाने कितने देवी-देवता स्थापित किए थे।

अभी मैं इन आततायियों की चालाकी पर आँसू बहा ही रहा था कि मेरे मित्र की आवाज मेरे कानों में पड़ी थी। वह फोन पर किसी को निर्देश दे रहा था- ''सुनो जमाल भाई! मेरा दोस्त आया, दिल्ली से, बहुत बड़े पद पर है वहाँ...हाँ...हाँ...यस...तुम एक काम करो...मेरे घर बकरे का दो किलो मीट भिजवा दो...घर पर नौकर है... बिलकुल...बिलकुल...पक्का मीट एकदम...अ...अच्छा...।''

मैंने उसकी तरफ देखा था। उसने फोन काटते हुए कहा था- ''अमर यार! यहाँ से वापिसी में चलो शाम को मीट बनावाएंगे और रास्ते से 'वेस्टर्न वाइन' वाले की दुकान से एक बोतल ले लेंगे। शाम को इन्जॉय करना है। आज की शाम तेरे नाम।'' और इतना कहने के बाद वह अट्टाहास करने लगा था। उसके अट्टाहास में मुझे उन आततायियों की गूँज सुनाई दे रही थी, जिन्होंने उस पवित्र स्थल पर चालाकी से देवी-देवता स्थापित कर दिए थे। मैं यह निश्चित नहीं कर पा रहा था कि असली आतताई कौन है?

240, बाबा फरीदपुरी, वेस्ट पटेल नगर
नयी दिल्ली-110008

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ग्यारह कविताएँ

■ *राजकुमार कुम्भज*

जब जल ही बन जाए जाल

गहरे तल में जाऊँ तो भी
और अगर जो तैरूँ सतह-सतह तो भी
समय है, समय की लय है, समय ही जय है
समय ही विजय है और समय का ही मय है
मेले में जैसे खो जाए कोई बच्चा घर-भूला
और फिर अकस्मात् ही
घर भूले बच्चे को याद आ जाए घर
घर याद आ जाए और भूल जाए रास्ता घर का
गहले तल में जाऊँ तो भी
अंततः बचकर मछली जाए तो जाए कहाँ
जब, जल ही बन जाए जाल?

ये क्या हुआ जाता हूँ मैं

यही मैं वही
जो पर्याप्त लोकतंत्र की पर्याप्त दुनिया से
पर्याप्त वाकिफ हुआ जाता हूँ
पर्याप्त आग के सामने, पर्याप्त आग
पर्याप्त कपास और पर्याप्त पानी भी
हुआ जाता हूँ
ये क्या हुआ जाता हूँ मैं
और क्यों?

आत्मा की तृप्ति तक

आवाज का खो जाना सरल है
मगर मुश्किल है, बेहद मुश्कि, किसी
पुकार का खो जाना
आएँ, चाहे, जितनी, अराजक-आँधियाँ
तमाम शोर,तमाम तेज रफ्तार
तमाम साधारण चीजों में करते हुए धमाचौकड़ी
तब भी, तब भी,
बारिश के होने की तरह
पृथ्वी के भीगने की तरह
इच्छा के जागने की तरह
और मृत्यु से बचकर जीने की तरह
कायम मुकाम मिलेगी पुकार
आत्मा की तृप्ति तक।

जो तुम

अच्छा नहीं होता है अँधेरा
और अच्छी नहीं होती है अँधेरे की इच्छा भी
तब भी होती है इच्छा कि हो थोड़ा अँधेरा
और संभवतः इतनी इच्छा पर और इतना
कि सकुशल देख सकूँ मैं
सौ-सौ सूर्योदय जैसे दमकता वह सौन्दर्य
जो तुम

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निर्बल कविता

जो निर्बल है
कविता पर निर्भर है आज भी
कविता ही करेगी कुछ न कुछ
एक दिन
उसके लिए भी जो सबके लिए
सोचते हैं वे आज भी
जो निर्बल हैं
अपने हिस्से की हिस्सेदारी में मरते हुए
सूखी पत्तियों के सूने में सिमटा है समय
तमामा-तमाम दु:खों
और तमामा-तमाम दुश्चिन्ताओं के बावजूद
लहलहा रही है फसलें खेतों में
और जो निर्बल हैं उसमें भी
भर रही है पर्याप्त बल
निर्बल कविता।

भाररहित रहते हुए

जब स्मृतियाँ
और स्वप्न शृंखलाएँ खो जाती हैं
हो जाती है पत्थर में तब्दील
तब आता है बल्कि आ ही जाता है
वह पत्थर युग
जिसमें सिरे से गायब मिलता है
संभावित ईश्वर का संभावित सिरा
खुद को ही उठाना होता है तब
समस्त पृथ्वी का समस्त भार
भार रहहित रहते हुए।

हर शख्स के भीतर

भय भी भक्ति देता है
भय भी शक्ति देता है
और भय ही देता है मुक्ति भी
जो है उससे और और अच्छा चाहिए
हर शख्य के भीतर एक बच्चा चाहिए
खिलता, खुलखुलाता।

वज्र अंधकार है

वज्र अंधकार है
इस वज्र अंधकार में
इस वज्र अंधकार की सृष्टि को बदलने के लिए
वज्र दृष्टि चाहिए, नई सृष्टि के निर्माण की
पल-पल, प्रतिपल, अभी तो, काँपता है
सूर्योदय
स्थिर है ध्रुवतारा विश्वास का फिर भी
संस्कृतियाँ लाँघती हैं लक्ष्मण रेखाएँ तो क्या
भाषाएँ कभी नहीं होती हैं अनाथ
बूढ़ा हो चुका बन्दर भी भूलता नहीं है
गाजर चबाना
मिट्टी की उलझन में जाता बीज भी पाता है
अंकुरण
वहीं का वहीं कोई नहीं अगर
थोड़ी जगह छोड़ो उजास के लिए, दीवारें तोड़ो
वज्र अंधकार है।

नई सृष्टि के लिए

नई सृष्टि के लिए
चित्त पड़ी तमाम कारीगरी के बावजूद
नई दृष्टि चाहिए
अभी तो गड्डमड्ड है सब का सब

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Barwaha Khandwa

वहीं का वहीं जगह
दिखाई देती हैं सभ्यताएँ
वहीं की वहीं जड़
दिखाई देती हैं संस्कृतियाँ
वहीं की वहीं जड़
दिखाई देती हैं बारहखाड़ियाँ
पूछता है बचपन
अपनी अगली संतान को
क्या दे जाओगे अंततः?
रात की बात रात जाने, कह देने भर से
बनेगी नहीं बात
बात बनाओ कि बने बात
रात घटाओ कि घटे रात
हाथ उठाओ कि उठे बचा वक्त
नई सृष्टि के लिए।

वाद्यवृंद का व्याकरण

यही वक्त वही वक्त था
जब चारों तरफ से घेर लिया था मुझे
जैसे बाढ़ का आतंक घेरता है खड़ी फसल
अनाज की
फिर भी लाखों-लाख बुलबुले थे मेरे भीतर
सुलगते हुए, कराहते हुए, धधकते हुए
और तब मैंने सोचा संगीत
और तब मैंने सोचा समूहगान
और तब मैंने सोचा संघर्ष
यही वक्त, वही वक्त था
जब अखबारों में छप रहे थे विज्ञापन
नेताओं, अभिनेताओं, आचार्यों
और धर्माचार्यों आदि के
नीति, नीयत, नैतिकता आदि के बारे में
जिस तरह काँटों के बीच खिलता है गुलाब
अपनी तमाम खुशबू लिए, वैसे ही मुझे भी
खिलना था
पल-प्रतिपल विश्वसनीय होते हुए
शोर और पुकार और आहट में
होता है तर्क बड़ा
कवि नहीं, कवि के आने भर की आहट से
होता है फर्क बड़ा
यही वक्त वही वक्त था
जबकि अपने सपने के कवि का
आ ही जाना चाहिए था शहीदी दिवस
मैंने एक बार फिर सोचा वाद्यवृन्द का
व्याकरण
और वन प्रांतर में भटकते हुए।

फर्क नहीं कि फिर शक्ल क्या?

फर्क नहीं कि मुझे जला दिया जाए
या दफन कर दिया जाए?
फर्क नहीं कि मुझे नहला दिया जाए
या यूँ ही छोड़ दिया जाए?
फर्क है
मुझ में और पुस्तक में
संभव हो सके तो
मुझसे पहले पुस्तक बचाना
पुस्तक बचेगी तो बचूँगा मैं
और आऊँगा बार-बार बारिश की तरह
अपने लोगों में, अपने लोगों के बीच
फर्क नहीं कि फिर शक्ल क्या?

331, जवाहर मार्ग
इन्दौर-452002

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अन्त के समय : अन्त के बाद

■ *विजयसिंह नाहटा*

एक

अन्त के समय-
कुछ दूर तलक पल भर साथ रहो
मेरे संग-संग प्रयाण पथ पर गतिमान बनो
मैंने सबसे कहा-
जल, हवा, आकाश, अग्नि, धरा से
विनयावनत कहा
-सुख से, दुख से, हर्ष, विषाद से
-आशा, उत्कंठा, प्रेम, स्मृति, विश्वास से
कहा
मैंने सान्निध्य से कहा
कुछ पल साथ रहो
मैंने मन से कहा-
बुद्धि, विवेक से कहा
आत्मा के अंतरंग कोश में
जाग्रत चेतना से कहा
मैंने मस्ती, अल्हड़ता औ' यौवन से कहा
मैंने विचार से कहा
निर्विचार से कहा
अंत के समय
मैंने करबद्ध सबसे कहा
अंत के समय मैंने भवितव्यता से कहा
मैंने प्रारम्भ से कहा मेरे साथ रहो
अंत के समय
मैंने सभी से पुरजोर कहा
अंत के समय समग्र अस्तित्व को पुकारा-
मेरे साथ रहो।

दो

अन्त के समय...
किसी का साथ भला क्यों रहे
क्या किसी की संगति में
आबद्ध रहना भर जीवन है?
निरपेक्ष तटस्थ निःस्पृह होकर
अपने अंतरंग में बसेरा करना
अभीष्ट जब हो तो
क्यों किसी की प्रतीक्षा मन में बसी रहे
तुच्छ-सी जड़ताओं में आसक्ति क्यों घनी
रहे?
सारे सौंदर्य से बाहर निकलकर
तमाम आलम्बनों से अछूता
निचाट एकांकी मैं
दिगम्बर ही रहूंगा
एकाकी कदमों से
सृष्टि के मर्म-पथ पर
अगणित काल रात्रियों को रौंदता

CC-0 Anand Niketan. Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Indira Gandhi Memorial College Of Education, Dhanbad

अनवरत बढ़ता रहूंगा।
एक पिपासु भिक्षुक की तरह
वन-प्रान्तर में
जनपदों में
नव-संवत्सरों को पारकर
किरण के आलोक में बिखर जाऊंगा
पल्लव-दलों पर, फूल पर, गाछ पर,
लहर पर
गंतव्य में लय हो
सृष्टि की जय गाथा गढ़ूंगा।

तीन

अन्त के समय...
फिर मिलेंगे
ओस सनी नम सुबह में
गर्मजोशी से मिलेंगे
बिना किसी मनमुटाव
गिले-शिकवे
पुरानी बहीखातों के
तमाम इन्द्राजों को छेक कर
एक साफ-सुथरे तलपट के साथ
अज्ञात भविष्य की वर्णमाला के साथ
मिलेंगे-मुस्कुरायेंगे
फिर मिलेंगे-
पुराने स्वप्नों, स्मृतियों, बची हुई आशाओं के
जीवंत स्मारक पर मिलेंगे
तो एक दूजे के प्रारब्ध का
ताजा पुष्प गुच्छ मिलेंगे
फिर मिलेंगे-
अस्फुट भाषा के साथ
फिर मिलेंगे की रिक्ति का पहला शब्द होगा-प्रेम
फिर मिलेंगे अस्पष्ट-सी अभिव्यक्ति
औ' जीवन के अदृश्य प्रमाणों
की संदिग्ध-सी संभावना के साथ
फिर मिलेंगे
अतीत से बेदखल
भविष्य से रहित
महज वर्तमान के प्रशांत
एकांकी द्वीप पर मिलेंगे
फिर मिलेंगे एक बार।

चार

अन्त के समय...
महज प्रमुदित वैराग्य होगा
और कुछ ना होगा
अंत के समय-
न विचार
न निर्विचार
न राग न विराग
न प्रवृत्ति न निवृत्ति
न कुछ खो जाने का भय होगा
न ही साथ ले जा पाने का संभ्रम
अंत के समय-
न थकी श्वासें होंगी
न धमनियों में जमा हुआ लहू
न जवाब दे चुका जीवट
और न ठंडा पड़ता उत्साह
अंत के समय-
न भविष्य का उत्सुक बोध होगा
न अतीत के संचित संस्कारों का आलोक
अंत के समय-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

न रहेगा कोई संज्ञा रूपी आश्रय
और न ही सर्वनाम का नीड़ ही
अंत के समय-
न आत्मीय संबोधन होगा
न ही कोई दैवीय आह्वान
अंत के समय न खिन्नता होगी
न अनिर्वचनीय आह्लाद
अंत के समय-
महज अंत होगा।

पांच

अंत के समय...
मैंने सबसे विदा ली
नवीन सूर्योदयों
आगत शताब्दियों
तमाम भावी पीढ़ियों से विदा ली
अंत के समय-
आगत नवांकुरों
अजन्में शिशुओं
अदृश्य जल राशि
अज्ञात वनस्पतियों...कंदमूलों
क्षणभंगुर कीट-पतंगों से विदा ली
आत्म-तत्वों
अनात्म-तत्वों
सापेक्ष-निरपेक्ष
अनादि-अनंत
सभी से करबद्ध विदा ली
उनींदी झीलों...हसीन वादियों
घाटियों पर उतरते बसंत
विशाल देवदारों पर मंडराते पतझड़
अंत के समय-
हर पल से विदा ली
अंत के समय-
उपस्थिति से विदा ली
अनुपस्थिति से विदा ली
स्मृति से विदा ली
स्पर्श-स्पंदन से विदा ली
अंत के समय-
दृश्य से विदा ली
अदृश्य से विदा ली
अंत के समय अस्तित्व से विदा ली
अनस्तित्व से विदा ली
अंत के समय सबसे विदा ली।

छह

अंत के बाद कौन आतुर रहेगा
कौन मंगल-गान करेगा?
किस अंकुर
किस अनाम किसलय में लूंगा जन्म
अंत के बाद कौन
हाथों में लिए खड़ा होगा
राह पर स्मृति का अंतहीन कोष?
अंत के बाद कौन
प्रतीक्षा में बैठा रहेगा विकल?
अंत के बाद कौनसी उम्मीद बच रहेगी?
किन लोकगीतों, दंत कथाओं में पढ़ा जाऊंगा?
अंत के बाद किस जीवन में नव-प्रवेश करूंगा
किस अंतहीन अनुक्रम में
एक क्रमांक की तरह दर्ज कर दिया जाऊंगा
अंत के बाद?

CC-0 Jangamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab, Jammu

सात

एक अंतहीन अनुक्रम है–
सन्नाटा है
टूटते सितारों का आकाश
झरते पत्तों का कानन
मुरझाये फूलों का उद्यान
अनन्त संध्या है
अंतहीन सुबह है
दाय में मिला था
प्रतिदाय में लुटाता हूं
अंत के साथ एक जीवन तक चलकर आता हूं
जीवन के साथ एक अंत के भीतर तक पहुंचता हूं
अनादि रात्रि है
अनंत दिवस है
अंत का कोई समय तय नहीं
आरंभ का कोई मुहुर्त मुकर्रर नहीं
चिर प्रवाह है
एक उत्तराधिकार दूसरे को सौंपता हूं
क्षण अथाह है–
एक कोंपल में फूट पड़ता
जीवन का अथाह सौंदर्य
–अंत आखिर किसका अंत है?
–अंत आखिर किसकी शुरुआत है?
अंत के उदासीन कोटर में दुबका
क्या ताकता रहूंगा
कातर नयनों से
जीवन की पहली सुबह...?

आठ

अंत के बाद भी
बजती रहेगी मुझमें जीवन–संगीत
अंत के बाद भी
स्मृति बसती रहेगी मुझमें
ज्यों धरती के गर्भ में दबी रहती
अदृश्य हरीतिमा
ज्यों सूर्योदय के समय
फूट पड़ती प्राची से लालिमा
ज्यों निरभ्र आकाश में
बरसने लगती जलधार
मुझमें शाश्वत गंध–सा महकता
रहेगा जीवन–पराग
ज्यों बीज में छिपा रहता अंकुर का भविष्य
ज्यों संभावनाओं के उदय में छिपे रहते
स्वर्णिम सफलताओं के आख्यान
अज्ञात सौर–मंडलों में तैरते
सितारों की टिमटिमाहट–सी
दमकती रहेगी मुझमें रोशनी
तमाम भाववेगों के संचित संस्कार
क्या मेरे साथ भस्मी भूत हो जायेंगे?
ज्यों सुलगता रहेगा
कोई अंगार राख के बुझे हुए ढेर में
अंत के बाद
ऋतु के पहले फूल–सा खिलेगा जीवन।

नौ

एकाएक नहीं आता अंत
अंतहीन प्रतीक्षा के बाद किसी उदास
दोपहर को थम जाती है श्वास
जैसे कि एकाएक नहीं आता अभ्युदय
हर क्षण के अनुक्रम में गुंथी रहती

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

 Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एकाएक नहीं खिलता फूल
अंकुर के हर पल में ज्यों पकती गंध
पतझड़ में झरकर गिरता पात
बसंत की दीर्घ तपस्या के बाद
गिरता है वनभूमि पर
ज्यों यकायक नहीं गिरता जलप्रपात
बूंद की अक्षय कामना अविरल बुनती है
जल-प्रवाह
ज्यों एकाएक नहीं खिरता दुर्ग
धीरे-धीरे धसक कर गिरता रहता गारा
नियति औ' प्रारब्ध के दो किनारों
के बीच अनवरत बहता
संगीत जीवन नदी का
अचानक भूली राहों पर नहीं मिलता जीवन
एकाएक नहीं आता सुनिश्चित अंत।

दस

अंत के समय...
यकायक एक दृश्य से ओझल हो जाना
एक उपस्थिति से विदा ले लेना
एक उपलब्धि से अदृश्य होकर शून्य हो जाना
दूसरे ही पल-
किसी अंकुर में लहलहाना
कोंपल में फूट पड़ना
फूल की गंध में विलय हो जाना
सुबह के आकाश की लालिमा में बिखर जाना
चिड़िया के संगीत में लयबद्ध हो जाना
बिल्कुल प्रशांत...नीरव...अनवरत...?

ग्यारह

अंत के समय...
किस अदृश्य आगार में
विलीन होता अंत?
किस अनाम जनपद से
लौट-लौट आता जीवन...।

बारह

अंत के बाद-
मैं यहीं कहीं विचरता रहूंगा
तुम्हारे ही इर्द-गिर्द
तुम्हारे अहसास की तल्खी में
हवा के संगीत में
-निरभ्र आकाश में तैरते शब्द-संसार में
-अनुगूंज में
-संधि-रेखा में
-आभार में
-प्रणति में
-कृतज्ञता में
हृदय के किसी सूने कोटर में
चेतना की अलंघ्य प्राचीर पर खड़ा
स्मृति की अंतहीन बाहों में
जकड़े पूरा भवितव्य
अस्तित्व के थरथराते पद्चिह्नों की रंगोली सजाता
मैं यहीं बसेरा करता रहूंगा
तुम्हारे आस-पास
फूल की चिर-गंध
कलकल बहते जल की अनवरत गतिशीलता में
लहरों के लयबद्ध संगीत में

CC-0. Gurukul Kangri Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Banbasa

-दृश्यावलि में
मैदानों पर ढलते बसंत में
चरवाहों के अल्हड़ गान में
-आख्यान में
-किवदंती में
होने न होने के बीच पसरे सन्नाटे में
शिलालेख की खिरती हुई इबारत में
वाक्य-विन्यास में
-रूपक में
-उपमा में
-अलंकार में
-अर्थ की निष्पत्ति में
अभिप्राय की सघन झाड़ियों में दुबका
जीवन के तमाम पर्यायों में झांकता रहूंगा
भूगोल के कृत्रिम विभाजनों से अछूता
देशकाल के संभ्रम तोड़ता
अज्ञात-सौरमंडलों के महाविस्तार में
सुदूर टिमटिमाती तारावलियों में
तुम्हारे रोम के हर संस्पर्श में धड़कता रहूंगा
-रक्त के एकाकार में
-चेतना के विपुल आगार में
-तमाम नश्वरताओं को होमता
कविता की आदि-पंक्ति में पहले
शब्द-सा खिलूंगा
यहीं आसपास...।

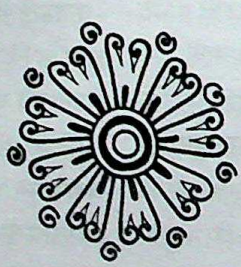

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कविताएँ

■ *डॉ. सत्यनारायण*

तुम अटकी हो

प्रार्थना के लिए दबी
हथेलियों के बीच एक रेखा
कीड़े-मकोड़ों से बची
घास की एक लहर
रेत के धोरों के बीच
उगा हरा कच्च फोग
तारों के बीच से छिटका
एक तारा
कांटों के बीच
कोई एक पंखड़ी
तुम अटकी हो मेरे भीतर
एक कहानी की तरह
जिसे मैं बरसों बरस से लिख रहा हूं।

आषाढ़

तुम
जिस आषाढ़ को
छोड़ गई थी
वही लिए बैठा हूं
आओ तो
वह बरसे।

तुम आओ तो

कितने तो साल बीत गये
गरमी की तपती दोपहर
मेरे पास है शब्दों की झारी
यही तो छोड़ गयी थी तुम
मैं प्याऊ लगा बैठा
टूटे घड़े के साथ
वे रिस रहे हैं कब से
तुम आओ तो
यह घड़ा फिर भरे।

ऐसे कटता है दिन

ऐसे कटता है एक दिन
ऐसे
हर मौसम हर दुख में
एक याद को
खरोंच न लगने देना
और सुनाना ऐसे कि
दोस्त ईर्ष्या करें
रोज रात को
पल-पल मरना
और सुबह सवेरे
चाय की थड़ी वाले

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

छोटे की आँखों में
उसे उतरते देखना
फिर
फिर भटकना
कभी भी
किसी भी समय
उसके गले में फंसा है
अभी भी
बरसों पुराना रुदन
डाक में अटका है
एक खत
जिसकी प्रतीक्षा है उसे
मौत तक
ऐसे कटता है एक दिन
ऐसे।

72/5, शक्ति कॉलोनी
रातानाड़ा, जोधपुर

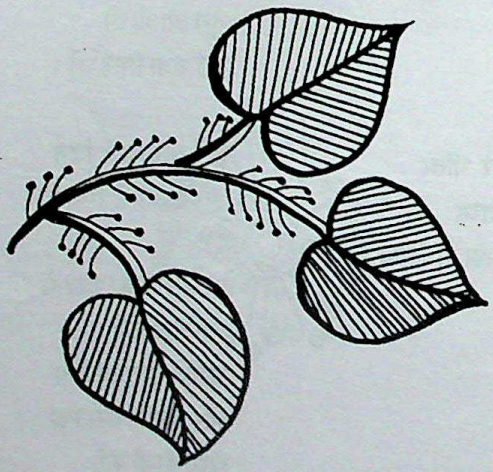

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समापन

▪ *बसंत जेतली*

हमारे स्पर्श से
परे हटने को
ऊँचा हो जाता है आकाश,
तट पर बिखरी
सीपियाँ उठाने बढ़े हाथों में
रेत भी नहीं छोड़ता समुद्र,
लेकिन हर सुबह
जिन्दगी के बेतरतीब क्षणों का जुलूस
एक चौराहा
पार कर लेता है।
पीछे सड़ते रहते हैं
बहुतेरे शव,
सब कुछ को नकार
सिगरेट के साथ कॉफी पीते
जोर से बहसते हैं बुद्धिजीवी...
कोई अरस्तु पैदा नहीं होता।
झपझपाने लगती हैं,
बूढ़े दुर्ग की आँखें,
गूँजने के बाद
थरथराकर थम जाता है
अजाना अट्टहास... खामोशी
जिसका अर्थ समझने में असफल
बहुत सी आकृतियाँ
कर लेती हैं आत्महत्या।
झरते हैं उड़ते कबूतरों के पंख
इतनी तीव्रता से
कि घबराकर
आसमान पर
काले कपड़े तान देते हैं लोग... अंधकार,
किसी ईसा की जन्मने की संभावना में
संभोग करते हैं कुँवारे जिस्म...
बहुत दिनों के बाद भी
कोई मरियम गर्भवती नहीं होती,
उभरता है खिझलाया प्रतिबन्ध-
'अब सलीब का जिक्र नहीं होगा।'
परिवर्तन के नाम पर
दौड़ते हैं।
कामनाओं के जंगली अश्व,
मुक्ति के लोभ में
गले में भारी पत्थर बाँधे
चिपचिपाती सड़क पर
घिटती है टूटी संज्ञाएँ...
अपना दाय सौंपने को।
तभी... कहीं कौंधती है रोशनी,
खाली हाथों का अहसास कर
हाँफने लगते हैं

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पराजित युग के बुत... प्यास...
दूर चमकती है
नीली धर पानी की।
अचानक
पत्थरों को फेंक
चीखने लगते हैं
दूरी से अनजान बुत,
इसी समय
इसे महसूस कर
अस्वीकारता है
पानी की आवश्यकता एक व्यक्ति
फिर
धर्म, राजनीति, साहित्य, सेक्स पर
एक साथ बोलता हुआ
नंगा हो जाता है,
अपनी बातों को
एब्सर्डिटी से भी आगे के
किसी लेबल से सजा
बाँटता है सभी के बीच।
एक छोटा-सा व्यक्ति
रोकता है सबको,
'ठहरो!
पानी की ओर चली
नई उपलब्धि की खुशी में
बहुत से हाथ
उसकी हत्या कर देते हैं...
मर जाता है मुक्ति-बोध।
हवाओं में
बिखराता है शीशा,
भरभराकर गिर जाते हैं
अनगिन मकान,
खण्डहरों में गूँजती हैं
अचीन्हीं ध्वनियाँ
चक्कर काटते हैं
चीत्कारते गिद्ध,
काँपने लगते हैं
बहुत से भयभीत धड़,
अभिशप्त हो जाती है
पूरी शताब्दी,
किसी दूसरे लोक की खोज में
निकल पड़ती है अग्नि
और
कोई भी मातरिश्वा
उसे वापस नहीं लाता।

6/261, मालवीय नगर, जयपुर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दो नवगीत

■ सलीम ख़ाँ फ़रीद

दुख ने मेरे पाँव पखारे

जीवनभर, जीवन से हारे
चढ़ते, गिरते रहे सितारे।

हाथ बंटाते हाथ नहीं हैं
रस्ते अपने साथ नहीं हैं।

एक अकेला इस मेले में
खुद को ही हर बार पुकारे।

कठिन समय की कठिन पुतलियों
नाखूनों से अलग अंगुलियों।

जाने किस वन में ठहरेंगे
हम जैसे रूठे बनजारे।

खुद में आज उतरकर देखा
उजियारे की चिन्मय रेखा।

डूब गया आनंद-उदधि में
दुख ने मेरे पाँव पखारे।

दुख की दुगुन बजे

दुख की दुगुन बजे
कौंध भरे सुख की 'सम' खातिर
सगरे-साज सजे।

बोल रहे आड़े-चौताले
ध्वनियों की जीभों पर छाले
उखड़ गई हैं सांसें सुर की
'धाऽ' तक गाना कौन संभाले
बिखर न जाएं इस 'उठान' में
कण्ठई कल-पुरजे।

मीठे छल के, मधुर तराने
हरिणों ने हरजस कर माने
आये चतुर अहेरी फिर से
अपनी राग-ध्वजा फहराने
प्रेम-विवश हो मृग, मृगजाये
बरबस प्राण तजे।

हसामपुर, सीकर-332718

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक अच्छी आत्मकथा

■ *अखिलेश*

मेरे मित्र को कुछ वर्ष से मुझमें तेजी से परिवर्तन दिखाई देने लगे हैं। मैं सोचता हूँ कि क्यों न बलात् आए इन परिवर्तनों को एक अच्छी आत्मकथा का रूप देकर भूना लूँ। जब हर कोई ऐसा गैरा आत्मकथा लिखने के लिए उतावला हुआ जा रहा है तो फिर भला मैं पीछे क्यों रहूँ? अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति से लेकर मेरी कालोनी के चौकीदार तक ने अपनी-अपनी विस्तृत आत्मकथाएँ लिख डाली हैं। मेरी कालोनी का यह चौकीदर 'टू इन वन' है। वह चौकीदार के साथ साथ कविता भी अच्छी कर लेता है मेरी समझ में कविता शृंगार रस से थोडी नीचे पर सेक्स रस से कुछ ऊपर नजर आती है। ऐसी विख्यात कवि की परछाई किसी को भी साहित्यकार बना सकती है। वैसे उसकी नजर में मैं बहुत ही तुच्छ व्यक्ति हूँ। सभी ख्यातिप्राप्त कवियों की भाँति वह भी मानता है कि गद्यकार अर्द्ध पागल होते हैं। वह और उसके अभिन्न मित्र यह मानते हैं कि जब कोई पागल, पागलखाने से छूटकर आता है तो अच्छा खासा लेखक बन जाता है। लेकिन मैं चौकीदार बनाम सेक्स रस के कवि की बातों में नही आने वाला। मैं तो अपने आप में जो विकट परिवर्तन महसूस कर रहा हूँ उन्हें आत्मकथा के माध्यम से पाठकों तक अवश्य पहुंचाना चाहूँगा। मेरी आत्मकथा अब तक प्रकाशित तमाम आत्मकथाओं की तुलना में सर्वश्रेष्ठ होगी। इसे प्रकाशित करने के लिए प्रकाशकों की लम्बी लम्बी लाईनें मैं अभी से देख रहा हूँ। कुछ प्रकाशक तो मुझे सीधी सादी गऊ समझकर मेरे सामने आश्वासनों का चारा डाल रहे हैं। लेकिन मैं विफरे हुए बैल के समान उनका चारा इधर उधर फैलाने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ रहा हूँ। मैं किसी अच्छी मोटी ताजी मुर्गी की तलाश में हूँ। मैं किसी ऐसे प्रकाशक के इंतजार में पसरा हूँ। जो मेरी आत्मकथा को प्रकाशित करने के एवज में एक मोटी रकम अग्रिम दे जाए।

मैं एक अच्छी आत्मकथा में पाए जाने वाले गुणों को अपने अन्दर समेटता जा रहा हूँ। अब तो मेरे कुछ शरारती गुण बाहर भी छलकने लगे हैं। मेरे शुभचिंतक उन महत्त्वपूर्ण गुणों को बीनकर वापिस मेरे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
अन्दर डालते जा रहे हैं। वे भी चाहते हैं कि मेरे व्यक्तित्व से एक ऐसी आत्मकथा प्रगट हो जो अपने आप में अद्वितीय हो। कबीर लिखते हैं कि–

कनवा फराय जोगी जटवा बढौले, दाढ़ी बढाया जोगी होइ गले बकरा।

जंगल जाई जोगी धुनिया रमौले, काम जराए जोगी बन गैले हिजरा।

सतं कबीर की दृष्टि में ये गुण, ढ़ोग हो सकते हैं। लेकिन अच्छी आत्मकथा ये विशिष्ठ गुण हैं। जिस आत्मकथा में उपरोक्त सभी तथा इनकी ही जाति के अन्य गुण न हों वह उत्तम आत्मकथा कहलाने की हकदार नहीं हो सकती। वह तो किसी विधानसभा क्षेत्र की मतदाता सूचियों का पुलिंदा मात्र ही होगी।

आजकल लम्बे घुँघराले खुबसूरत केश तथा करीने से सजी संवरी दाढ़ी ढोग न होकर आत्मकथा लेखक की कीमती आभूषण हो गए हैं। बढ़ी हुई दाढ़ी से आत्मकथा लेखक के सौन्दर्य की अनुभूति होती है। बढ़ी दाढ़ी से आत्मकथा लेखक के सौन्दर्य के अनुभूति होती है यदि दाढ़ी बकरे की दाढ़ी के समान नोकदर हो तो फिर वह तो सोने में सुहागा के समान है।

तिलक मैं बचपन से ही लगाता रहा हूँ। अतः कब का लोकमान्य हो चुका यदि लोकमान्य नहीं तो प्रांतमान्य, नगरमान्य अथवा ग्राममान्य तो पक्का मैं हूँ ही। आत्मकथा के कवर पेज पर मुझ तिलकधारी की तस्वीर देखकर पाठक मुझे अवश्य सम्मान देगें। यदि मैं तिलक न लगाऊँ तो मेरे प्रिय मित्र मुझे हिकारत की नजरों से देखेंगे। तिलक के बिना मेरी आत्मकथा के प्रति पाठकों के हृदय में श्रद्धा उपजना संभव नहीं है।

हिन्दी साहित्य के बियावान में मुझे धूनी रमाते हुए वर्षो बीत गए। दुष्टों तुम चन्दन से नहाओ और मैं तन पर राख लपेटता रहूँ? यह घोर अंधेर अब नहीं चलने वाला। खैर, यदि मुझे चन्दन में लिपटने का मौका नहीं दोगे तो भी ऐसी धांसू आत्मकथा लिखूंगा कि दुनिया की बेस्ट सेलर पुस्तकें भी इसके सामने फीकी पड़ जाएंगी।

संत कबीर आगे लिखते है कि–

मूड़ मुड़ाए हरि मिले, तो सब कोई लेई मुड़ाय,

बार बार के मूड़ते भेड़ न बैकुठ जाय।

मैं भी मूड़ मुड़ाना नहीं चाहता। मैं तो रूपवती स्त्रियों को अपनी आत्मकथा पढ़ने के लिए प्रेरित करना चाहता हूँ। वैसे भी आजकल सुन्दर स्त्रियाँ चांद की ओर कम ही ताकती हैं। तो फिर मैं क्यों चंदियल होने की तमन्ना दिल में रक्खूं? मैं तो महानगरों के आधुनिक छोकरों के समान लम्बे लम्बे बाल रखना चाहता हूँ। इन्हें रबर बैड़ से सजाना चाहता हूँ। आंखों में काजल और होंठों पर लिपिस्टक लगाकर अपनी आत्मकथा को नए आयाम देना चाहता हूँ। मैं संत कबीर से पूर्णतः सहमत हूँ। कि मूड़ मुड़ाने से हरी नहीं मिलते। मुझे

CC-0.Anamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2015-Grant

'हरी' नहीं, हरी को हरने वाली चाहिए। मैं घर पर रोज रोज की आफत का इंतजाम नहीं करना चाहता। अत: मुझे घर में रहने वाली नहीं मन को हरने वाली किसी सुन्दरी की नितांत आवश्यकता है। उसके बिना मेरी आत्मकथा कहीं कमजोर न पड़ जाए? इसलिए मैंने एक चलताऊ हरने वाली का पार्ट टाइम इंतजाम भी कर लिया है।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक अच्छी आत्मकथा तभी खूब बिकेगी जब उसमे पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति की आत्मकथा के समान जानदार स्केन्डल हों। यदि उस आत्मकथा में मोनिका लेविस्की का जिक्र न हो तो बिल क्लिंटन का पड़ौसी भी उनकी तरफ देखना पसन्द नहीं करता उनकी हरने वाली ने तो करोड़ो डालर कमा कर दिला दिए। देखता हूँ मेरी हरने वाली क्या गुल खिलाती है। उस विशाल आत्मकथा के जितने पृष्ठ हैं उतने पृष्ठ तो मेरी आत्मकथा की भूमिका में ही होगें। मैं उस छोटी मोटी आत्मकथा के भारतीय बाजारों में आ जाने के पश्चात अपनी आत्मकथा लाकर छा जाना चाहता हूँ।

जब तसलीमा आपा की उपन्यासनुमा आत्कथा जल्दी ही दीमके चाटने लगेंगी। तब मेरी आत्मकथा बाजारों में धूमकेतु के समान चमकेगी और मेरे घर आँगन में धन की बरसात होगी।

मेरा खानपान कुछ इस तरह का है कि मेरी आत्मकथा की विषय वस्तु पाठक के हृदय में हिरणों के समान कुलांचे भरती हुई आगे बढ़गी। इस प्रयोजन को पूरा करने के लिए मैंने बहुत पहले ही नानवेज लेना शुरु कर दिया था। मैं नानवेज के साथ थोड़ी सी ले लेने में भी कोई हर्ज नहीं समझता हूँ। इससे तो आत्मकथा पढ़ रहा पाठक भी झूमने लगता है। मेरी आत्मकथा ऐसी आत्मकथा होगी जो सोते को जगा दे। रोते को हँसा दे। यदि कोई अज्ञानी इसे कब्रस्थान में भी पढ़े तो मुर्दे जागकर पूछें की 'बन्दे बता तेरी रजा क्या है।'

मैं पहले पहनावे के मामले में नानसेंस था। लेकिन जब से आत्मकथा लिखने गुण उभरे हैं बहुत ही सेन्सफुल हो गया हूँ। फिर भी अभी पहनावे को लेकर रिसर्च की आरंभिक अवस्था में ही हूँ। लेकिन यह मेरे लिए चिन्ता का विषय नहीं है। आजकल सूट नहीं टाई वालों की आत्मकथा भी खूब बिक रही है। अत: यह आशंका मेरे मन में अब भी बनी हुई है कि कहीं ऐसा न हो की मुझ कुरता-पजामाधारी की आत्मकथा को कुछ लोग 'चिमटे से भी छूना पसन्द न करें।' इस कारण से मध्य युगीन पौशाक धारण करने से कभी कभी घबराता हूँ।

आजकल महान लेखक तभी आत्मकथा लिखना प्रारम्भ करते हैं जब वे सठिया जाते हैं, अर्थात् साठवर्ष की आयु पार कर जाते हैं। आज आत्मकथा के बाजार में जितना भी माल भरा पड़ा है वह साठ वर्ष से ऊपर की आयु के लेखकों द्वारा सप्लाई किया गया है। मैं अपनी आयु साठ वर्ष की हो जाने तक बेकार बैठ कर इंतजार नहीं कर सकता। मैं अब तक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Jammu Kashmir Academy of Art, Culture & Languages, Jammu

सैंतालीस पतझड़ पार कर चुका हूँ। अब आत्मकथा लेखन का यही शानदार समय है। मैं अपनी आत्मकथा में इस बात का उल्लेख विशेष रूप से करूंगा कि मृत्यु उपरांत, मेरी भस्म पदलोलुपों और लालची किस्म के लोगों पर फैंकी जाए। मेरी अस्थियां गंगा में न बहाकर किसी गटर में डाली जाएं। इसका एक लाभ यह होगा कि कुछ दिनों के लिए ही सही वह गटर पवित्र हो जाएगा। उस गटर से आने वाली बदबू फूलों की खुशबू में बदल जाएगी।

आज तो न जाने कितनी ही पुण्य आत्माएं है जो इस धरती पर आत्मकथा लिखने के लिए वापस जन्म लेने की फिराक में है। अतः अब मुझे बिलकुल भी देर नहीं करना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि मैं देर कर दूँ और असामाजिक तत्व मेरे मन के अरमानों में पलीता लगा जाएं। यदि मैंने आत्मकथा लेखन के विचार को कुछ दिनों के लिए रोक लिया तो मेरे कीमती गुणों के क्षरण की संभावना हो सकती है।

मैं अकेला अपने आप को प्रेरित कर रहा हूँ एक अच्छी आत्मकथा लिखने के लिए। मेरे प्रिय पाठकों, मैं तुम्हारा आभारी रहूंगा और तुम मुझ पर भारी रहोगे, बशर्ते कि भाविष्य में आने वाली मेरी आत्मकथा पढ़कर तुम मेरे गुणों को आत्मसात कर सको।

63, तिरुपति नगर, इटारसी 46111 (म.प्र.)
मो. 09424487068

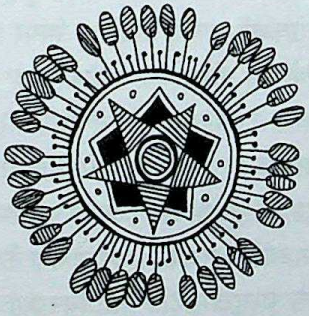

CC-0. Kashmir Treasures Collection Srinagar. Digitized by eGangotri Siddhanta Kosha Collection. Digitized by Eka Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

 Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नई शताब्दी में हिन्दी आलोचना

■ *डॉ. त्रिभुवन राय*

आलोचना चुनौती भरा एक गंभीर दायित्वपूर्ण रचनात्मक कर्म है। आलोचना को यदि रचनात्मक कृति की चिकित्सा कहें, तो आलोचक का कार्य एक सुलझे हुए चिकित्सक का है जैसे चिकित्सा के क्षेत्र में, कदम बढ़ाने से पहले चिकित्सक को अपनी निष्ठा तय करनी पड़ती है वैसे ही आलोचक को भी। एक निष्ठावान दायित्व सजग डॉक्टर का उद्देश्य रोगी को रोगमुक्त करने के साथ-साथ वृहत्तर समाज के स्वास्थ्य को सुनिश्चित बनाए रखना होता है। इसके लिए रोगी और रोग की सम्यक् छानबीन और उसके कारणों की पड़ताल आवश्यक होती है। उसी तरह रचनात्मक कृति की पड़ताल, उसकी सम्यक विवेचना भी रजरूरी है। वैसे डॉक्टर की तुलना में आलोचक की भूमिका इस अर्थ में पृथक और विशिष्ट है कि पहले के सम्मुख जहाँ नकारात्मक स्थिति होती है, वहाँ दूसरे के सम्मुख सकारात्मक-नकारात्मक दोनों स्थितियाँ होती हैं।

वस्तु विशेष को मर्यादित और नियंत्रित दृष्टि से देखना आलोचना है। साहित्यिक आलोचना भी मर्यादित और सन्तुलित दृष्टि से साहित्यिक कृति को उसकी सम्पूर्णता में परखने का काम करती है। इस हेतु वह अन्तर्व्याख्यान के साथ अवान्तर अर्थों को उकेरते हुए आगे बढ़ती है। स्वस्थ आलोचना के लिए आलोचक का सहृदय होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी होता है। सहृदयता चाहे वह संवादी हो अथवा प्रशस्त, आलोचक को कृति का अधिकारी पाठक ही नहीं बनाती, उसे सहानुभूति के साथ कृति में उतरने के लिए तत्पर भी बनाती है। रचना के विवेकात्मक यात्राक्रम में यह सहृदयता ही उसे कृतिकार के प्रति अनावश्यक रूप से कठोर होने से बचाती है। सहृदयता के साथ आलोचनात्मक विवेक भी सच्ची आलोचना के लिए अपेक्षित है। आलोचक की विनम्रता और सहृदयता जहाँ रचना के साथ निकटता साधने में मददगार होती है, वहाँ उसका आलोचनात्मक विवेक उसे रचना के किसी पक्ष विशेष के प्रति आसक्ति से बचाता है। सम्यक आलोचना के लिए, कहना नहीं होगा कि रचना और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Banaras Jaunpur

रचनाकार के प्रति एक हद तक निर्लिप्तता जरूरी है। जैसे किसी श्रेष्ठ रचनाकर्मी के लिए लिप्तता और निर्लिप्तता, आसक्ति और अनासक्ति के द्वन्द्व से पूरी तरह छुटकारा पाना कठिन होता है, उसी प्रकार आलोचक के लिए भी यह कम चुनौतीपूर्ण नहीं है। फिर भी रचनाकर्मी जैसे इन दोनों के बीच संतुलन साधते हुए आगे बढ़ता है वैसे ही आलोचक के लिए भी इनमें संतुलन बनाए रखने की जरूरत होती है अन्यथा आलोचना कर्म के स्खलित होने का खतरा बना रहता है।

आलोचना जहाँ कृतिगत वैशिष्ट्य को उजागर करने के लिए भीतर पैठकर आवश्यक सन्दर्भों के साथ उसे व्याख्यायित करती है, वहीं उसके दुर्बल और सबल पक्षों को रेखांकित करते हुए उसकी मूल्यवत्ता की ओर इंगित भी करती है। इस तरह से आलोचना कृतिगत रचनात्मकता और तज्जन्य आह्लादकता के साथ उसकी वैचारिक ऊर्जा को भी पाठक समाज के भीतर उतारने का उपक्रम करती है। ऐसा करके वह पाठक की सहायता तो करती ही है, कृतिकार का भी कम उपकार नहीं करती। इस दृष्टि से आलोचक न लेखक का प्रतिद्वंद्वी होता है, न ही उसका दुश्मन होता है। वह उसका समनाधर्मा मित्र होता है, जो अपनी क्षमता में उसके कृतित्व को आलोक प्रदान करके उसे अधिकारिक लोगों तक पहुँचाता है।

काव्येन किं कविस्तस्य तन्मनोवृत्तिना।
नीयन्ते भावकैर्यस्य न निवन्धा दिशो दशा।।

राजशेखर का यह कथन जहाँ आलोचक के महत्व को रेखांकित करता है, वहीं उसके दायित्व का भी संकेत करता है। भावयित्री प्रतिभा का धनी आलोचक कारयित्री प्रतिभा के धनी लेखक का असल में सहयात्री होता है। उसका संवेदनशील विवेकवान अधिकारी पाठक होता है। अपनी समीक्षक प्रतिभा के बल पर वह लेखकीय विशिष्टताओं को उद्घाटित करके उन्हें पाठकीय चेतना का अंग बनाकर उसे समृद्ध करने में सहायता पहुँचाता है। यह ठीक है कि लेखक और उसकी रचना पहले आते हैं, आलोचक और उसका आलोचनात्मक लेखन बाद में, लेकिन इसी आधार पर आलोचक को परजीवी अथवा दूसरी श्रेणी का लेखक नहीं कहा जा सकता। आलोचक की अपनी क्षमता और अपना वैशिष्ट होता है। किसी रचनाकार अथवा रचना को समर्थ आलोचक का मिलना एक सुखद सौभाग्य की बात होती है। यदि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, तुलसीदास और जायसी को नहीं मिले होते, तो संभवतः उनकी विशिष्ट शक्तियों से हिन्दी समाज भी परिचित नहीं हो पाता। दुनिया के लोगों की बात तो दूर रही। आज कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, प्रसाद, निराला और प्रेमचंद आदि देश के बाहर भी प्रतिष्ठित हैं, तो इसका श्रेय इनके आलोचकों का कम नहीं।

हाँ, कुछ आलोचक ऐसे भी मिल जाएँगे जो सर्वत्र दोष ही ढूँढ़ते दिखाई पड़ेंगे। कुछ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आलोचक ऐसे भी होते हैं, जो सब कुछ की तारीफ करते नजर आते हैं, परन्तु सच्चे अर्थों में आलोचना कर्म न दोष दर्शन है और न ही सब कुछ की प्रशंसा करने में निहित होता है। सच्चा आलोचक तत्वाभिनिवेशी होता है। वह कृति के भीतर उसकी तात्विक विशिष्टताओं की परख करते हुए अपनी प्रतिभा के संस्पर्श से उसे इस प्रकार उजागर करता है कि उसकी दीप्ति पाठकों को अनायास चमत्कृत कर जाती है। एक सच्चा आलोचक न अपने को लेखक के ऊपर थोपता है और न ही अपने विशिष्ट चश्मे से कृति को देखता है। वह वस्तुतः किसी कृति में उस वस्तु को देखने का प्रयत्न करता है, जो लेखक के मन्तव्य की प्रतिकृति के रूप में उसमें निहित होती है। ऐसी स्थिति में किसी आलोचक के लिए यह कब मुमकिन होता है कि वह अपने को, अपनी विशिष्ट विचार दृष्टि को किसी लेखक पर आरोपित करके उसकी परिधि मों ही उसके लेखन कर्म की पड़ताल करे। कोई भी सच्चा आलोचक अपनी मर्यादाओं का ध्यान रखकर आगे बढ़ता है। यह ठीक है कि प्रत्येक आलोचक की अपनी पृष्ठभूमि होती है, उसका निजी व्यक्तित्व होता है, उसकी दृष्टि का अपनापन होता है। ऐसी स्थिति में उसकी आलोचना में इतनी झलक अस्वाभाविक नहीं। हाँ, जो बात अस्वाभाविक और अनुचित है, वह यह है कि कृति और कृतिकार को परे करके आलोचक अपनी वैचारिकता की झोंक में रचना विशेष पर अर्थहीन फतवे जारी करता जाए। इसी तरह यह भी कम चिन्तनीय नहीं है कि किसी कमजोर लेखक और उसकी साधारण रचना को भी अपनी विचारधारा के अनुकूल पाकर अथवा इतर कारणों से उसे श्रेष्ठ साबित करने के लिए धरती और आसमान को एक कर दिया जाए।

आज का समय बेहद कठिन और चुनौतीपूर्ण है। यह इसिलए कि आज शत्रु, शत्रु के रूप में नहीं, हितैषी मित्र का बाना धारण करके सामने आ रहा है। और हम हैं कि उसे गले लगाने के लिए बेचैन हैं। कवि अरविन्दाक्षरन को संभवतः यही कारण है कि बचपन में सुनी कहानियों में सबसे बेहतर कहानियाँ वे प्रतीत हैं, 'जिनमें राक्षस पात्र बनकर आते थे। वे राक्षस थे इन्सान बनने का बहाना उन्होंने कभी नहीं किया। वे बिल्कुल राक्षस थे।' साम्राज्यवाद और विश्व पूँजीवाद की नवीनतम पैंतरेबाजियों–भूमण्डलीकरण, बाजारवाद और विदेशी पूँजी का हम जिस तरह से स्वागत कर रहे हैं, वह हमारे आत्मछाल का ही एक खतरनाक नाटक है। दुश्मन का व्यूह हमारे चारों ओर परस रहा है और हम हैं कि प्रतिक्रिया विहीन भाव से लम्बी तानकर सो रहे हैं। ऐसी स्थिति में वही रचना और वही आलोचना सार्थक और दिशादर्शक कही जाएगी जो मनुष्य विरोधी चक्रव्यूह की पहचान कराने में हमारी सहायता करेगी। आज रचना ही रचनाकार के होने की अभिव्यक्ति नहीं है। आलोचना भी आलोचक के वास्तविक अस्तित्व का प्रत्यय और अभिव्यक्ति है। निश्चय ही आलोचक को अपने अस्तित्व को अर्जित करना पड़ता है। यह अर्जन जितना ही सशक्त और प्रभावशाली होगा आलोचना भी उतनी ही धारदार होगी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आलोचक ऐसे भी होते हैं, जो सब कुछ की तारीफ करते नजर आते हैं, परन्तु सच्चे अर्थों में आलोचना कर्म न दोष दर्शन है और न ही सब कुछ की प्रशंसा करने में निहित होता है। सच्चा आलोचक तत्वाभिनिवेशी होता है। वह कृति के भीतर उसकी तात्विक विशिष्टताओं की परख करते हुए अपनी प्रतिभा के संस्पर्श से उसे इस प्रकार उजागर करता है कि उसकी दीप्ति पाठकों को अनायास चमत्कृत कर जाती है। एक सच्चा आलोचक न अपने को लेखक के ऊपर थोपता है और न ही अपने विशिष्ट चश्मे से कृति को देखता है। वह वस्तुत: किसी कृति में उस वस्तु को देखने का प्रयत्न करता है, जो लेखक के मन्तव्य की प्रतिकृति के रूप में उसमें निहित होती है। ऐसी स्थिति में किसी आलोचक के लिए यह कब मुमकिन होता है कि वह अपने को, अपनी विशिष्ट विचार दृष्टि को किसी लेखक पर आरोपित करके उसकी परिधि मों ही उसके लेखन कर्म की पड़ताल करे। कोई भी सच्चा आलोचक अपनी मर्यादाओं का ध्यान रखकर आगे बढ़ता है। यह ठीक है कि प्रत्येक आलोचक की अपनी पृष्ठभूमि होती है, उसका निजी व्यक्तित्व होता है, उसकी दृष्टि का अपनापन होता है। ऐसी स्थिति में उसकी आलोचना में इतनी झलक अस्वाभाविक नहीं। हाँ, जो बात अस्वाभाविक और अनुचित है, वह यह है कि कृति और कृतिकार को परे करके आलोचक अपनी वैचारिकता की झोंक में रचना विशेष पर अर्थहीन फतवे जारी करता जाए। इसी तरह यह भी कम चिन्तनीय नहीं है कि किसी कमजोर लेखक और उसकी साधारण रचना को भी अपनी विचारधारा के अनुकूल पाकर अथवा इतर कारणों से उसे श्रेष्ठ साबित करने के लिए धरती और आसमान को एक कर दिया जाए।

आज का समय बेहद कठिन और चुनौतीपूर्ण है। यह इसिलए कि आज शत्रु, शत्रु के रूप में नहीं, हितैषी मित्र का बाना धारण करके सामने आ रहा है। और हम हैं कि उसे गले लगाने के लिए बेचैन हैं। कवि अरविन्दाक्षरन को संभवत: यही कारण है कि बचपन में सुनी कहानियों में सबसे बेहतर कहानियाँ वे प्रतीत हैं, 'जिनमें राक्षस पात्र बनकर आते थे। वे राक्षस थे इन्सान बनने का बहाना उन्होंने कभी नहीं किया। वे बिल्कुल राक्षस थे।' साम्राज्यवाद और विश्व पूँजीवाद की नवीनतम पैंतरेबाजियों–भूमण्डलीकरण, बाजारवाद और विदेशी पूँजी का हम जिस तरह से स्वागत कर रहे हैं, वह हमारे आत्मछाल का ही एक खतरनाक नाटक है। दुश्मन का व्यूह हमारे चारों ओर परस रहा है और हम हैं कि प्रतिक्रिया विहीन भाव से लम्बी तानकर सो रहे हैं। ऐसी स्थिति में वही रचना और वही आलोचना सार्थक और दिशादर्शक कही जाएगी जो मनुष्य विरोधी चक्रव्यूह की पहचान कराने में हमारी सहायता करेगी। आज रचना ही रचनाकार के होने की अभिव्यक्ति नहीं है। आलोचना भी आलोचक के वास्तविक अस्तित्व का प्रत्यय और अभिव्यक्ति है। निश्चय ही आलोचक को अपने अस्तित्व को अर्जित करना पड़ता है। यह अर्जन जितना ही सशक्त और प्रभावशाली होगा आलोचना भी उतनी ही धारदार होगी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सार्वभौमिकता के नाम पर अत्यधुनिकता जहाँ आदमी को अपने देशकाल के सन्दर्भों को काटकर जड़विहीन बना रही है, वहीं केन्द्र के विरोध और बहुकेन्द्रीयता के समर्थन को बढ़ावा देकर एक तरह से बिखराव और अलगाव के बीज भी बो रही है। आत्म संकुचन को बढ़ावा देने वाली यह उत्तर आधुनिकता विखण्डन के नाम पर धार्मिक और जातिगत संकीर्णता के काँटे भी कम नहीं उगा रही है। इन काँटों में उलझकर यदि सामाजिक ढाँचे के रेशे उघड़ते हैं वह छिन्न-भिन्न होता है, तो आश्चर्य की कोई बात नहीं। कितनी बड़ी विडम्बना है कि बाहर से जिसे अत्याधुनिक और आधुनिकोत्तर कहा जा रहा है, वह भीतर दकियानूसीपन के अँधेरे को बढ़ावा दे रही है। धार्मिक कट्टरता और जातिगत संकीर्णता और विभेदीकरण इसी के नतीजे हैं।

उत्तर संरचनावादी खण्डन का स्वागत है, बशर्ते वह हमारे साहित्य और आलोचना कर्म को ऊर्जा प्रदान कर सके। भला वह विखण्डन किस काम का जो संकीर्णता और कट्टरता को बढ़ावा देकर सदियों पुरानी सामाजिक सहिष्णुता और सांस्कृतिक समरसता के रेशे-रेशे को उघाड़कर हमें दुर्बल बना दे। आपकी सार्वभौमिकता भी हमारे लिए तभी स्वागत योग्य होगी जब वह अपने संदर्भों से काटने के बजाय वसुधैव कुटुम्बकम् और सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया की दिशा में बढ़ने में सहायक होगी। यदि उत्तर आधुनिकता के नाम पर एकता के स्थान पर बिखराव, सहयोग की जगह कलह, सहिष्णुता के स्थान पर कट्टरता को बढ़ावा मिलता है, तब कोई भी सजग व्यक्ति उसे संदेह की नज़रों से देखेगा ही। महावृतान्तों को नकारिए पर उनके माध्यम से प्राप्त स्मृतियों और सपनों को तो मत छीनिए। कारण कि मनुष्य अपनी तमाम दुर्बलताओं के बावजूद इनके सहारे निरन्तर आगे बढ़ता रहा है और मौजूदा दौर में भी आगे बढ़ेगा। इसलिए जरूरी है कि पश्चिम के अंधानुकरण के स्थान पर उधर से परोसी जाने वाली चीजों के स्वीकार के पहले उनकी जाँच-परखकर ली जाए। किसी भी दिशा में आने वाले ज्ञान-प्रवाह की शिकायत नहीं होनी चाहिए। न ही पुरानी मान्यताओं को चुनौती देने वाली अवधारणाओं से भयभीत होने की जरूरत है। हाँ, उनके अविवेकपूर्ण अंध स्वीकार को उचित अवश्य नहीं कहा जा सकता। कालिदास ने ठीक कहा है, पुराना सब कुछ अच्छा ही नहीं होता और न ही नए के रूप में आने वाला सब कुछ बुरा और अग्रहणीय होता है। विवेकशील मनुष्य विचारपूर्वक इनमें से सत का ग्रहण और असत का त्याग करता है-

पुराणमित्येवव न साधु सर्व न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढ़ः पर प्रत्ययनेयबुद्धिः।।

- मालविकाग्निमित्रम्

आज की परिस्थितियों में आलोचना का कार्य रचना के मर्म के उद्घाटन के साथ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education and Research Jammu

परिवेश और समय सन्दर्भ के बीच उसे व्याख्यायित एवं विश्लेषित करने की जरूरत है। इसके लिए निःसंदेह एक सार्थक मानवीय दृष्टि और उपयुक्त विश्वबोध अपेक्षित है। वैयक्तिक पसन्द और नापसन्द का आलोचना के क्षेत्र में न तो कोई स्थान है और न ही उसका कोई हस्तक्षेप होना चाहिए। यहाँ सामने सिर्फ रचना होनी चाहिए जिसे थहाने और जिसके सन्दर्भ में अपने समय की सच्चाइयों को रेखांकित करने के लिए आलोचक को अपने औजारों के साथ निर्भानत भाव से उतरना पड़ता है। अध्ययन प्रसूत उसका बोध और उसकी दृष्टि की गहराई और व्यापकता रचना के सत्य को उजागर करने में उसकी मदद करते हैं। इनके असन्तुलित होने पर किसी अच्छी रचना को अपने समय की चुनौतियों के सन्दर्भ में खोल पाना सरल नहीं।

निश्चय ही इक्कीसवीं शताब्दी के आलोचना के केन्द्र में समाज और उसके केन्द्र में अवस्थित मनुष्य होगा। इसलिए जिस तरह के रचनात्मक सरोकारों में सामाजिक संसक्ति और मनुष्य निष्ठा अपेक्षित है, उसी तरह से आलोचना में भी इन दोनों की माँग गैर वाजिब नहीं है। मीडिया का संजाल जहाँ सामाजिक सच्चाइयों को लोकप्रियता की चकाचौंध से धूमिल करके पेश कर रहा है वहाँ आलोचना का उसे बेरहमी से उघाड़ना बहुत आवश्यक है अन्यथा अमानवीय शोषण के पसरते काँटेदार जाल से निकल पाना मुश्किल है। समय की सच्चाइयों से रू-ब-रू हुए बिना न साहित्यकार अपने धर्म का पालन कर सकता है और न ही आलोचक अपने दायित्व का निर्वाह कर सकता है।

साहित्य की ही तरह आलोचना भी कोई क्रान्ति नहीं करती। यह सच है, पर यह भी उतना ही सच है कि जिस तरह से साहित्य अपेक्षित बदलाव की मानसिकता तैयार करने में सहायक होता है, उसी तरह आलोचना भी बदलाव की मानसिकता की जमीन तैयार करती है। इसलिए 21वीं शताब्दी में तमाम तकनीकी प्रगति के बावजूद साहित्य और आलोचना दोनों की जरूरत से इंकार नहीं किया जा सकता। मनुष्य और उसकी मनुष्यता को स्थानच्युत करके उन्हें वस्तु में तब्दील करने वाली साजिशों से सचेत और जागरुक करने का काम निश्चय ही आलोचना कर सकती है। चुनौती भरे वर्तमान में आलोचना की जरूरत को रेखांकित करते हुए डॉ. शंभुनाथ ने बहुत उपयुक्त लिखा है, 'आलोचना चीजों की शक्ल बदल नहीं सकती, लेकिन वह औपनिवेशिक उत्तर आधुनिकताओं के अतार्किक आधारों पर चोट कर सकती है। वह पुराने और आधुनिक साहित्य से गुजरकर हमारे परम्परा विवेक और विकास विवेक को समृद्ध कर सकती है। वह ढहती हुई सभ्यताओं के बीच से बिना दहशत के गुजर सकती है। वह लोकप्रियतावादी संस्कृतियों के एक्सपोजर में भी प्रवृत्त हो सकती है ताकि इस कठिन समय को समझा जा सके।' (दुस्समय में साहित्य, पृष्ठ 17)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

21वीं शताब्दी के प्रथम दशक के इन वर्षों के साहित्य और आलोचना के सन्दर्भ में आलोचना के मूल स्वर की बात करना बहुत जल्दबाजी होगी। हाँ, उसके स्वर की दिशा की ओर संकेत जरूर किया जा सकता है। मेरी अपनी विनम्र सम्मति में नई शताब्दी में आलोचना का मूल स्वर स्त्री विमर्श-दलित विमर्श जैसे जातिगत खण्डित विमर्श नहीं, अपितु मानव केन्द्रित विमर्श होना चाहिए। अवश्य ही उक्त और अन्य सभी विमर्श इसके अंग रूप में ग्रहीत होने चाहिए। खण्डित विमर्श के स्थान पर समग्रता में किया जाने वाला विमर्श ही मानव विमर्श के लिए अपेक्षित संवाद का द्वार खोल सकता है और इस संवाद के जरिए ही समय के मुकाबले के लिए जरूरी मानसिक तैयारी की जा सकती है। ऐसी तैयारी जो समष्टि के हितों की संरक्षा और निखालिस मनुष्य और उसके मनुष्यत्व की दिशा के संधान को जरूरी ऊर्जा प्रदान कर सके।

2/8-6, सेक्सरिया कम्पाउण्ड
मुकुन्द जाधव मार्ग, परेल विलेज, मुंबई-400012

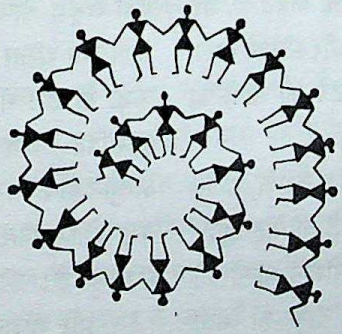

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वैश्वीकरण और हिन्दी में ज्ञानोदय की संभावना

■ *विनोद शाही*

औपनिवेशिक गुलामी से आजादी के लिए संघर्षरत भारत में हिन्दी के प्रचार-प्रसार की जरूरत एक आन्दोलन बनकर सामने आई थी, परन्तु अब सवाल यह है कि क्या मौजूदा वैश्वीकरण के दौर में भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार को हमें पहले की तरह एक चुनौती के रूप में लेते रहना होगा? क्या भाषा के प्रचार-प्रसार और विकास के बीच अभी भी पहले जैसा सीधा रिश्ता दिखाई देता है? यानि जिसे हम किसी भाषा का समृद्ध होना कहते हैं, वह क्या उस भाषा को बोलने और सीखने वालों की तादाद में वृद्धि के पैमाने को मापी जा सकती है?

दरअसल वस्तुस्थिति इसके उलट है। कोई भाषा समृद्ध होती है, तो वह खुद-ब-खुद उसे बोलने और सीखने वालों की संख्या के दायरे को बढ़ाने वाली हो जाती है। प्रचार-प्रसार का ऐसा रूप और तरीका विधायक है तथापि एक निश्चित भूगोल के बाहर किसी भी भाषा का प्रचार-प्रसार कभी बहुत गहराई में नहीं उतर सकता। कोई भी प्रचारित-प्रसारित भाषा किसी अन्य भूगोल के क्षेत्र में मूल व्यक्तित्व नहीं बन पाती और न ही उसके माध्यम से उस क्षेत्र के मौलिक चिन्तन और सृजनशीलता का विकास मुमकिन है। इस लिहाज से हम औपनिवेशिक दौर में, पूरी दुनिया में हुए अंग्रेजी के प्रचार-प्रसार के बुरे नतीजे के गवाह हैं।

अंग्रेजी, यूरोप के उग्र राष्ट्रवाद के दौर से ताल्लुक रखने वाली भाषा के आरोपण की तरह शेष दुनिया में फैली इसे अंग्रेज, एक समृद्ध भाषा के द्वारा किए जा सकने वाले शेष संसार के सभ्यताकरण की एक कड़ी के रूप में देखते थे। भारत में यह आरोपित अंग्रेजी, आज भी हमारे आधुनिकीकरण और सभ्यताकरण का एक बड़ा स्रोत बनकर हमारे यहाँ अपरिहार्य रूप में मौजूद है।

और मौजूदा वैश्वीकरण के दौर में यह अंग्रेजी मीडिया की एकमात्र वर्चस्वी भाषा के रूप में, पूरी दुनिया के वैज्ञानिक और तकनीकी उच्च तकनीकी विकास का स्रोत बनने के साथ-साथ मूल्यों के निर्धारण का जिम्मा भी अपने सिर पर उठाए घूमती

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bhatinda

दिखाई देती है। सही मायने में देखें, तो दुनिया में केवल एक अंग्रेजी ही ऐसी भाषा है, जिसका वैश्वीकरण हुआ है। इससे सूचनाओं के आदान-प्रदान में बड़ी तेजी आई है और नौकरियों का एक बहुराष्ट्रीय संसार उपलब्ध हो गया है, परन्तु इस 'उधार के विकास' ने शेष दुनिया के जमीनी अंतर्विकास की रफ्तार को कुन्द करके, उसके सामने लगातार आत्मविहीन होते जाने का संकट भी खड़ा कर दिया है।

हिन्दी के प्रचार-प्रसार की बात सोचते हुए हमें इस पूरे परिदृश्य को ध्यान में रखना चाहिए। हिन्दी के प्रचार-प्रसार ने भारत में औपनिवेशिक दौर में, आन्दोलन की शक्ल ली थी। यूरोपीय नवजागरण की छाया में वहाँ राष्ट्रवादी विचारधारा ने जोर पकड़ा था। वहीं भारत में साम्राज्यवाद के हित का पोषण करने वाली प्राच्यवादी नीति बन गई थी। हमें इस नीति को ठीक से समझने की जरूरत है, क्योंकि हिन्दी के प्रचार-प्रसार की जरूरत मुख्यत: इसी नीति के विरोध में प्रतिक्रियास्वरूप सामने आती है। अपने राष्ट्रवादी वर्चस्व के एजेण्डे के तहत अंग्रेज हमारे यहाँ अंग्रेजी और पश्चिमी सभ्यता-संस्कृति और ज्ञान के स्रोतों की श्रेष्ठता का प्रचार करते हैं। इसकी प्रतिक्रिया में हिन्दी और उर्दू के शुद्धतावादी और परम्परावादी रूप उभरे, जिन्हें हमारे बौद्धिकवाद के एक हिस्से न विकल्प की तरह अपनाया। ये लोग मुख्यत: ब्राह्मणवादी सोच डाले रखते थे। इनकी नज़रों में भारतीय होने का मतलब था-भाषा की शुद्धता और अपने ज्ञान के स्रोतों को अपनी जड़ों और अस्मिता का पर्याय बना लेना। यही वह प्राच्यवादी प्रवृत्ति थी जिसने हिन्दी के साम्प्रदायिक अंतविर्भाजन की नींव डाली। इनमें से ज्यादातर लोग अंग्रेजी पढ़े-लिखे भी थे, परन्तु इनकी आधुनिकता हिन्दी को, अंग्रेजी से जुड़ी राष्ट्रवादी मानसिकता से ग्रस्त करने वाली हो जाती थी।

नतीजतन भारत में जब 19वीं सदी के शुरुआती दौर में अंग्रेजो द्वारा प्रेरित हिन्दी के प्रचार-प्रसार की भूमिका बनाई गई, तो उसने सबसे पहले हिन्दी को, हिन्दी और उर्दू में विभाजित कर दिया। 18वीं सदी तक भारत में जिस हिन्दी का विकास हो रहा था, उसमें यह तय करना मुश्किल था कि हम किस हिन्दी रूप को हिन्दी कहें और किसे उर्दू, परन्तु 19वीं सदी के आरम्भ काल में भाषा का यह साम्प्रदायिक विभाजन उभरकर जल्द ही नुमायाँ हो गया। इसी विभाजन की वजह से भारत में उर्दू के महान् शायरों के रूप में बहादुर शाह जफर, मीर तकी मीर और गालिब जैसे लोग प्रकट हुए जबकि इससे पूर्व कालों में अमीर खुसरो, कबीर, रसखान, जायसी अथवा रहीम जैसे कवियों को अलग से उर्दू के कवि कहना मुमकिन नहीं है। ऊपर दूसरी ओर दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द और श्रद्धाराम फिल्लौरी जैसे सांस्कृतिक स्रोतों के साथ-साथ संस्कृत की ओर उन्मुख हिन्दी का मॉडल लेकर सामने आ जाते हैं। ठीक से देखा जाए, तो तब से लेकर अब तक हिन्दी के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रचार-प्रसार में दिलचस्पी लेने वाली जो संस्थाएँ जैसे नागरी प्रचारिणी सभा आदि समाई हुई उनका ताल्लुख मुख्यत: ऐसी ही संस्कृत और सांस्कृतिक स्रोतों की ओर उन्मुख हिन्दी सेवा से था और है।

महात्मा गाँधी हिन्दी के इसी प्राच्यवादी साम्प्रदायिक विभाजन को रद्द करने के लिए हिन्दुस्तानी की बात उठाते थे। यानि ऐसी भाषा जिसमें हिन्दी और उर्दू की अलहदारी के लिए कोई गुंजाइश नहीं हो। देश की एकता और अखण्डता के लिए ऐसी भाषा को अपनाना वक्त की जरूरत थी। स्वतन्त्रता संग्राम की कामयाबी के लिए इस तरह की भाषा को अपनाना मददगार हो सकता था। बहुत से लोगों ने उस दौर में हिन्दुस्तानी को अपनाया भी, परन्तु बौद्धिक और अकादमिक क्षेत्रों में खासतौर पर आधुनिक ज्ञान-विज्ञान में दिलचस्पी रखने वाले मध्यवर्ग में हिन्दी और उर्दू की शुद्धतावादी रूपों की जरूरत ज्यों की त्यों बनी रही।

वजह एकदम साफ थी और वह यह थी कि अगर हमें अपनी भाषा के जरिए ज्ञान-विज्ञान का विकास करना था, तो हमारे लिए अपने ज्ञान के सांस्कृतिक स्रोतों में वापसी जरूरी थी। अंग्रेजी के पारिभाषिक उथले और आरोपित थे। उन्हें आत्मसात करने के लिए जरूरी था कि हम उनके अनुवाद ऐसे शब्दों के रूप में करते जो संस्कृत और फारसी भाषा में अपनी ज्ञान परम्परा से जुड़े हुए थे, परन्तु अनुवाद शब्दों की अजनबीपन को पूरी तरह दूर नहीं कर सकते थे। इसलिए अपने मौलिक विकास के लिए रास्ता, सिवाय संस्कृत या अरबी-फारसी में लौटने के दूसरा नहीं था। दूसरे अरबी-फारसी के ज्ञानस्रोत भी हमारे लिए पूरी तरह उपलब्ध नहीं थे। इसलिए आखिरकार उर्दू की बयान संस्कृतोन्मुख हिन्दी को अपनाने के अलावा हमारे लिए ज्ञान-विज्ञान में ताल्लुख रखने वाली प्रगति और विकास को हासिल करने का और तरीका नहीं बचा था।

नतीजतन हिन्दुस्तानी के प्रचार-प्रसार की जरूरत, आजादी मिलने के बाद के दौर में, एक हद तक कम होती हुई आखिरकार अखबारों, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया या कथा साहित्य पर एकाग्र होकर बाजार के मुताबिक ढलने लगी। दूसरी ओर चिन्तन-मनन वाली तथा ज्ञान-विज्ञान की अकादमिक दुनिया में संस्कृतोन्मुख हिन्दी का इस्तेमाल जरूरी हो गया।

इस तरह देखा जाए, तो जिसे हम वैश्वीकरण कहते हैं, उसका जो पहला औपनिवेशिक दौर था, उसमें हिन्दी ने संस्कृतोन्मुख होते हुए खुद को ज्ञान की भाषा के रूप में खोजने और विकसित करने का काम एक हद तक किया, परन्तु मौजूदा दौर का जो बाजारवादी वैश्वीकरण है, उसमें मीडिया के वर्चस्व वाली भाषा हिन्दुस्तानी से भी ज्यादा लचीले, खिचड़ी या हिंगलिश जैसे रूप में सामने आ रही है। यों अंग्रेजी में भी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में आरकेस्ट्रा या कोलाज की तर्ज पर भाषा की स्रोत बहुलता के उथले रूप में पाया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। तथापि यह सम्प्रेषण क्षेत्र विश्वभाषा की ओर बढ़ने से ज्यादा भाषाओं की ज्ञानमूलक संरचनाओं में बिखराव का संकेतक ज्यादा है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया केन्द्रित, बहुराष्ट्रीय कॉर्पोरेट संस्कृति ने भाषाओं की सम्प्रेषणीयता के सूचनात्मक पहलू का तो खूब विकास-विस्तार किया है, परन्तु उसी वजह से भाषाओं के ज्ञानमूलक रूपों का विखण्डन एक बड़े खतरे और एक नई चुनौती की तरह भी उभरा है।

इस परिप्रेक्ष्य में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया केन्द्रित रूप, हमारे विवेचन ओर पड़ताल की विजय होनी चाहिए। यहाँ ध्यान में रखने वाली बात यह है कि 'पॉपूलर' और 'पिस्टारा' (खिच्चड़) भाषा और संस्कृति के बहुराष्ट्रीय या वैश्विक बाजार के मामले में इलेक्ट्रॉनिक ही नहीं, प्रिंट मीडिया में भी अंग्रेजी का वर्चस्व कायम है। बेशक एक बड़े पाठक और दर्शक वर्ग की वजह से हिन्दी, इस बाजार में अपनी हिस्सेदारी लगातार बढ़ा रही है तथापि इसे हिन्दी के एक विकसित भाषा होने या हो सकने की दावेदारी की वजह नहीं बनाया जा सकता। मीडिया का बाजार अन्य भाषाओं की बड़ी घुसपैठ के बावजूद अपने मूल चरित्र में नव औपनिवेशिक ही है। संसाधनों पर कब्जे की वजह से भाषा और संस्कृति की गुणवत्ता की कसौटियाँ भी अभी तक अंग्रेजी की दुनिया ही तय करती है और बाकी दुनिया पर लागू करती और करवाती है। इससे बाकी दुनिया एक नए कार्य आस्वादमूलक गुलामी को ओढ़कर जीने के लिए विवश कर दी जाती है। मीडियायी भाषा संस्कृति के इस नए उद्योग के द्वारा अब इस तरह कीगुलामी की चेतन के पुनरुत्पादन की कच्ची सामग्री में बदलती जाती है।

वैश्वीकरण के दौर की इस नई गुलामी से उबरने के लिए जरूरी है कि हिन्दी एक दफा फिर से ज्ञान-विज्ञान की भाषा होने की सामर्थ्य को गहराई के लिए अपने सांस्कृतिक स्रोतों में लौटना आरम्भ करे। इस तरह नवजागरण के दौर में हमारा जो काम अधूरा रह गया था, उसे अब हम एक नई भाषा चेतना के रूप में विकसित करके अपने नवजागरण को नव ज्ञानोदय में बदलने की कोशिश कर सकते हैं।

स्पष्ट है कि इस दफा हमारा यह काम पुनरुत्थानवादी नहीं होगा। यों भी पुनरुत्थान, जिस राष्ट्रवाद की छाया की तरह आया था, उसका दौर जा चुका है। आज हम बहुराष्ट्रवादी गठबंधनों के दौर की ओर बढ़ रहे हैं। इन गठबंधनों के बहुलतावादी रूप अब भाषाओं और संस्कृतियों के साम्प्रदायीकरण की वजह भी नहीं बन सकते हैं। कट्टर साम्प्रदायिक मूलवाद अगर कहीं है, तो वह इस नई प्रक्रिया के विरोध में है। इसलिए अब की दफा अगर हिन्दी अपने ज्ञान के स्रोतों में वापसी का रास्ता पकड़ती है, तो वह पुनरुत्थान और मूलवाद के खतरों से कुछ अलहदा हो सकने की वजह से , ज्यादा ज्ञानमूलक गहराई में उतर सकती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दूसरे उत्तर आधुनिक विमर्श, विचारधाराओं को अपने-अपने दृष्टिकोण को एकांगित में ढालने हेतु, ज्ञानमूलक विखण्डन की प्रक्रिया को जन्म दे रहे हैं। इसका सामना भी ज्ञान-विज्ञान या दर्शन की मदद से किया जा सकता है। हिन्दी के पास एक दर्शनधर्मी जमीन है जो क्लासिकी दौर के बाद उससे खो गई है। उसे अपनी उस जमीन को फिर से खोजना और पकड़ना होगा। उस दौर का हमारा चिन्तन यों भी वैश्विक चिन्तन जैसा कुछ है। बेशक आज के मुकाबले खासा अमूर्त या आध्यात्मिक, परन्तु वहाँ अब भी संभावना तो है ही-वहाँ से यहाँ तक आ सकने के लिए।

9 एल, चीमानगर एक्स, मिट्ठापुर रोड
जालंधर-144014, मो.: 09814658098

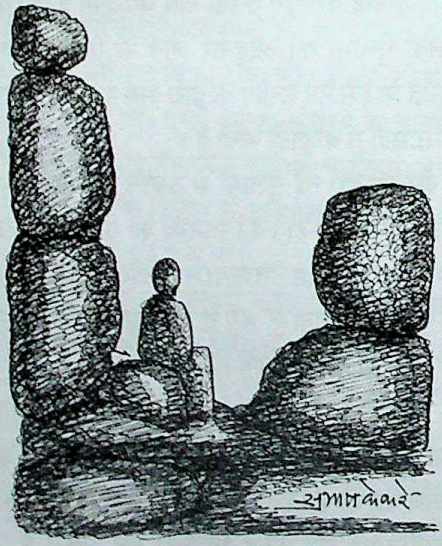

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सैक्स का पाखण्ड

■ *डॉ. रंजना जायसवाल*

यूँ तो आज सेक्स का सेंसेक्स पूरी दुनिया में 'हाई' पर है, पर यह स्थिति सभी समाजों में हमेशा एक-सी नहीं रही है। इसकों लेकर तमाम पाखण्ड भी हैं। यूँ कहें कि सेक्स और सामाजिक पाखण्ड का सम्बन्ध सबसे प्राचीन है। कहने को तो शहरी क्षेत्र के अंग्रेजी पढ़े लिखे आधुनिक और पश्चिम के लोगों का सेक्स में पिछड़ा नहीं माना जाता, पर यह भी एक मिथक ही है। कई बार एक विदेशी लड़की भारत की किसी गाँव की लड़की से ज्यादा पिछड़ी होती है, क्योंकि गाँव की लड़की अपने भीतर की सहज मूल प्रवृत्ति से आधुनिक व ज्ञानी बन जाती है, भले ही उसने सेक्स शिक्षा न पाई हो।

जहाँ तक 'सेक्स मुक्ति' का प्रश्न है, पश्चिमी समाज ने बमुश्किल दो-ढाई दशक पूर्व ही यह स्वतंत्रता पायी है। जबकि चीन, भारत तथा अनेक मुस्लिम देशों में यह स्वतंत्रता या खुलापन आज से ज्यादा प्राचीन काल में था। भारत का कामसूत्र, चीन का 'मिडनाइट स्कालर्स' और अरब देश का 'परफ्यूम्ड गार्डेन' इसके बेहतर उदाहरण है। यह आश्चर्य की बात है कि आज इन्हीं देशों में सेक्स को लेकर अनेक बन्धन हैं। यहां तक कि बॉलीवुड की कोई फिल्म भी खुजराहो की नकल नहीं कर सकती है।

सेक्स सम्बन्धी चीजें आधुनिक समय की देन नहीं है। नेपल्स की 'पोंपोई की खुदाइयों' में इस तरह की सामग्रियाँ मिली हैं। रोमन साम्राज्य में तो अश्लील कला साहित्य पोर्नोग्राफी और सीक्रेट म्यूजियम भी थे। हाँ, वहाँ स्त्रियाँ बिल्कुल नहीं जा सकती थीं। वहाँ जाने की इजाजत कुछ खास लोगों को ही थी, पर आज स्थिति बदल चुकी है। अब ने केवल स्त्रियाँ गुप्त संग्रहालयों में जाने लगी हैं, बल्कि उन पर खुली राय भी देने लगी हैं। सेक्स और इरॉटिक के क्षेत्र में इस आजादी के पीछे स्त्री आन्दोलनों की बड़ी भूमिका है। स्त्री मुक्ति आन्दोलन ने स्त्री की इच्छा को (जिसमें सेक्स सम्बन्धी इच्छाएँ भी शामिल थीं।) महत्व देने की मुहीम चलाई थी। तब यह स्वाभाविक ही था कि सेक्स सम्बन्धी अवधारणाएं बदले और वे बदली

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी, क्योंकि स्त्री की इच्छा दखल सेक्स सम्बन्धों में हो गया। जहाँ तक भारत की बात, आधुनिक काल में जब पश्चिमी स्त्रियों के लिए सम्पूर्ण प्रत्यक्षीकरण के दरवाजे खुले, उनके भीतर की स्वाभाविक इच्छाएँ भी जागीं और जब अस्सी के दशक में यहाँ वीडियो क्रान्ति हुई और एशियाड के बाद रंगीन टेलीविजन और वी.सी.आर. संस्कृति पनपने लगी, तो समाज में भी जाने-अनजाने सेक्स की अवधारण बदली। इसे वीडियो का नीला जहर भी कहा गया। पहले नीली फिल्में सिर्फ पुरुष कुछ खास जगहों पर जाकर देखते थे और घर आकर स्त्रियों में तमाम भ्रम फैलाते थे, पर आज मध्यवर्गीय स्त्रियाँ भी ऐसी फिल्में अपने घरों में देखती हैं और अपना मानक खुद बनाती हैं। ऐसा नहीं कि इन स्त्रियों को इसके अलावा कोई काम नहीं, वे अन्य क्षेत्रों में पुरुषों के समकक्ष ही कार्य कर रही हैं। हाँ, यह बदलाव जरूर हुआ हे कि सेक्स पर पुरुष का एक पक्षीय राज कम या कमजोर हुआ है। इसका श्रेय कल मशीन युग को जाता है।

आज टेलीविजन, फिल्मों, अखबारों, पत्रिकाओं में सेक्स के क्षेत्र में बदलाव नजर आने लगा है। 'कास्मोपॉलिटन नाम की पत्रिका में लगभग पोर्नोग्राफी छपती है, जिसके कारण फेमिना' जैसी पत्रिकाओं को भी सेक्स पर खूब छापना पड़ता है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि कास्मोपॉलिटन पत्रिका ने स्त्रियों में 'सेक्स सुख' के बारे में नयी आजादी पैदा की है। आधुनिक व वैज्ञानिक बनाया है, जिसमें स्त्रियाँ हैं, जो अंग्रेजी पढ़ी-लिखी हैं तथा सैक्स की मनोवैज्ञानिक, आधुनिक व वैज्ञानिक जानकारियों वाली पुस्तकें पढ़ती हैं। चूँकि ये पुस्तकें अंग्रेजी में ही उपलब्ध हैं, इसलिए यह ज्ञान एक विशेष वर्ग तक सीमित है। सामान्य लोग तो गलत व खराब जानकारियों वाली सेक्स पुस्तकें ही पढ़ते हैं, क्योंकि हिन्दी में ऐसे ही सड़क-छाप कोकशास्त्रों की बहुतायत है, जिसे हिन्दी के प्रकाशक सस्ते मूल्य पर लिखवाकर खुद मालामाल हो जाते हैं। अंग्रेजी के बोल्ड विवादास्पद, इरॉटिक पुस्तक प्रकाशक भी हिन्दी में मनोवैज्ञानिक, आधुनिक व वैज्ञानिक जानकारियों वाली सेक्स सम्बन्धी पुस्तक छापने के पक्षधर नहीं।

उनका कहना है कि अंग्रेजी में ही जानकारियाँ ठीक हैं, क्योंकि एक खास वर्ग तक सीमित हैं, हिन्दी में ऐसी पुस्तकें पढ़कर सबसे पहले हमारे घर की बहु-बेटियाँ बिगड़ेंगी। इसी सोच की वजह से हिन्दी में एक भी महत्वपूर्ण सैक्स गाइड नहीं है और अधिकांश लोग सेक्स सम्बन्धी अधकचरी जानकारियाँ रखते हैं, जिसके कारण उनकी स्त्री सम्बन्धी सोच नहीं बदलती। यहाँ तक कि वे 'सेक्स शिक्षा' का भी विरोध करते हैं। दिल्ली सरकार ने जब छठी कक्षा से सैक्स शिक्षा लागू करने की बात की थी, तो कई संगठनों ने हो-हल्ला मचाया। उनके अनुसार यह शिक्षा बच्चों को बिगाड़ेगी और उन्हें खूली छूट मिल जाएगी। यह एक बुराई है, पर वे भूल रहे हैं कि समाज में तथाकथित बुराइयाँ पहले से ही मौजूदा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हैं। इन्टरनेन्ट पर पोर्नोग्राफी का बोलबाला है। अभी कुछ दिन पूर्व एक चेनल ने बताया कि जापान ने बच्चों के लिए एक 'रेप वीडियोगेम' निकाला है, जिसमें बच्चों को रेप करने के नए-नए तरीके निकालने की प्रेरणा दी गई है। जो जितने नए और ज्यादा आइडियाज देगा, उसे उतने अधिक नम्बर मिलेंगे। सोचा जा सकता है इस खेल से बच्चों को क्या प्रेरणा मिलेगी? एस. एम.एस. संस्कृति (टाइम्स आफ इण्डिया) के जोक्स, कॉल सेन्टर्स, टेलीविजन, पत्रिकाऐं, अखबार सभी तो सेक्स परोस रहे हैं। कहाँ-कहाँ बच्चों को बचाएंगे? सावधानी तो यही है कि उन्हें सेक्स शिक्षा देकर सावधान कर दें, वरना या तो वे असाध्य रोगों के शिकार होंगे या फिर शातिर लोगों द्वारा शोषित। अभी 18नवम्बर 2009 को एक स्कूल के आठवीं कक्षा के बच्चों के पास ब्लू फिल्मों की सी.डी. अश्लील तस्वीरें व अन्य सस्ती किताबें बरामद हुईं और यह जानकर तो सभी हिल गए कि उनका पूरा एक ग्रुप है जिसमें कक्षा 6से 12 तक के बच्चे सम्मिलित हैं अभिभावक और अध्यापक एक-दूसरे को दोषी ठहरा कर चुप हो गए। किसी को इसका समाधान नहीं सूझ रहा है। अध्यापक व अभिभावक खुद भी इन फिल्मों को देखते हैं,भले ही गुप्त रूप से बच्चों से छिपकर, पर बच्चे इस रहस्य से अनिभज्ञ नहीं हैं और अवसर मिलते ही वे भी वही सब दुहराते हैं। आश्चर्य तो यह है कि इन सबके बाद भी 'सेक्स शिक्षा' को गलत माना जा रहा है। परम्परावादी अपनी पुरानी सोच के कारण 'सेक्स' शब्द को ही गन्दा समझते हैं, जबकि आज 'सेक्स' का अर्थ और सन्दर्भ बदल गया है। 'सेक्सी लुक' का महत्व है। 'सेक्सी' कहलाना सबको भा रहा है। यहाँ तक कि बच्चे अपनी माँ को भी कांप्लीमेन्ट में 'सेक्सी' कह देते हैं। क्रिकेट में भी 'सेक्सी शॉट' का प्रयोग हो रहा है। 'सेक्स' आज गन्दगी का नहीं, आधुनिक सुन्दरता का पर्याय है। फिर भी सेक्स के पाखण्ड का अंत नहीं है।

सेक्स को लेकर आए दिन बखेड़ा मचाया जाता है। जिन साहित्यकारों या चित्रकारों ने जरा सा भी खुलेपन का परिचय दिया है, उन पर अश्लीलता का आरोप लगा दिया जाता है। तसलीमा नसरीन व एम.एफ. हुसैन इसके ताजा उदाहरण है। विदेशों में बहुत पहले इस तरह के आरोपों व इनसे जुड़े पाखण्डों की बहुयायत होती थी। कुछ उदाहरण देखिए। आस्ट्रिया के प्रसिद्ध चित्रकार इगोन-शील पर यह आरोप लगा था कि उनकी कला में अश्लीलता है। शील पर एक फिल्म भी बनी थी। फिल्म के एक दृश्य में सेक्स के पाखण्ड का खुलासा इस प्रकार है-जिस न्यायाधीश को शील पर अश्लीलता के मुकदमें का फैसला आने वाली सुबह देना है, वह रात को अपने ड्रॉअर में छिपाए शील के अश्लील रेखांकनों का पूरा मजा ले रहा है। उसकी पत्नी चुपचाप पति के इस पाखण्ड को देख रही है। इटली के महान फिल्मकार 'फेलिनी' की एक चर्चित फिल्म का दृश्य भी कुछ इसी प्रकार है-'शहर का पुरातनपंथी अधेड़ मेयर इस बात से परेशान है कि उसके घर के सामने एक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ा पोस्टर लगा दिया गया है, जिसमें एक भव्य औरत की औरत नेची हुई है। उस मेयर की नींद हराम हो जाती है। वह औरत मेयर के सपनों में अपनी विशालता और भव्यता से इस तरह खड़ी हो जाती है कि वह बौना हो जाता है।'

ऐसे न्यायाधीश और मेयर पश्चिमी देशों में अब नहीं मिलते, पर भारत और मुस्लिम देशों में इनकी संख्या पर्याप्त है। अफगानिस्तान की फिल्म 'ओसामा' का एक दृश्य देखें–एक लड़की अपने घर की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए लड़के के वेश में काम करती है, क्योंकि वहाँ के बन्द समाज में लड़की को काम करने से मनाही है। एक दिन लड़की पकड़ी जाती है और एक बूढ़ा अपने घर में कैदकर सम्पूर्ण वासना से उसे देखता है।

निश्चित रूप से स्त्री देह को अपनी इच्छा से इस्तेमाल की भावना ही सत्ता के प्रतिनिधियों को इस तरह से छूट देती है तथा स्त्री पर तमाम प्रतिबन्ध लगाती है। यहाँ तक कि क्या पहनें क्या न पहनें के मूल अधिकार पर भी ड्रेस कोड तय है। भारत से ज्यादा मुस्लिम देशों का समाज स्त्री के इस बुनियादी आजादी का समर्थन नहीं करता। अभी कुछ दिन पूर्व सूडान की युवा पत्रकार अहमद अल हुसैन लुबना ने स्त्री के इस मूल अधिकार के लिए लड़ाई लड़ी है। सूडान में स्त्रियों को पैंट पहनना अपराध है। वहाँ के नैतिक कोतवाल इसे महिलाओं के लिए अभद्र मानते हैं। इस अपराध के लिए उन्हें अधिकतम चालीस कोड़े लगाए जा सकते हैं तथा एक सौ सूडानी डॉलर की जमानत देनी पड़ सकती है। कोड़े भी प्लास्टिक की रस्सियों के बने होते हैं, जिनकी चोट से जो जख्म बनता है, उसका दाग कभी नहीं मिटता। निश्चित रूप से इस सजा के पीछे मजा चखाने की भावना है। लुबना 3 जुलाई, 2009 को सूडान की राजधानी खारतूम में बारह स्त्रियों के साथ ट्राउजर पहने पकड़ी गई थी। उन्हें थाने ले जाया गया, जहाँ कई स्त्रियों ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया (जैसा कि अमूमन स्त्रियाँ करती हैं) और दस कोड़े खाकर घर वापस आ गई पर लुबना कुछ स्त्रियों के साथ जिद पर अड़ गई कि हमने कोई अपराध नहीं किया है। फिर अदालत का तमाशा, जेल, जुर्माना सब हुआ। चर्चित पत्रकार और संयुक्त राष्ट्र संघ में काम करने वाली लुबना का यह मुकदमा अन्तर्राष्ट्रीय बना। सबसे मजेदार बात यह कि मुकदमे में विचार के दिन ज्यादातर पेंट पहनी हुई महिलाओं ने स्त्रियों के प्रति भेदभाव के विरुद्ध नारे लगाए। लुबना को छोड़ दिया गया, पर उसे दुःख है कि सात सौ से भी ज्यादा महिलाएँ इसी अपराध के लिए सजा काट रही हैं। बात यहाँ सिर्फ पेंट पहनने की नहीं है, यह स्त्री की स्वतन्त्रता, स्वाभिमान और आत्मनिर्णय के अधिकार का है पर तालिबानी मानसिकता ने मुस्लिम स्त्रियों को तमाम तरह के अभद्र कानूनों के शिकंजे में जकड़ रखा है। इसकी तह में जाएँ, तो इसके पीछे डर की भावना काम करती मिलेगी। हो भी क्यों नहीं। किसी फासिस्ट सत्ता द्वारा नियंत्रित समाज के पास जितनी शक्ति होती है, वह उतना ही डरा होता है। पर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

यह शुभ लक्षण है कि सूडानी स्त्रियाँ कोड़े खाने का खतरा उठाकर भी ड्रेस कोड का विरोध कर रही हैं।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारत में भी पाखण्डी मानसिकता के उदाहरणों में कमी नहीं है जबकि टेलीविजन, फिल्मों, अखबारों और पत्रिकाओं में सेक्स के क्षेत्र का बदलाव नज़र आने लगा है, पर भारत में कई तरह के समाज विरोधी विचार और संगठन सभी के पेंट पहनने को गलत मानते हुए उसका विरोध करते हैं। उसके अनुसार जींस पहनने से बलात्कार बढ़ रहे हैं। वे भूल रहे हैं कि पूरी तरह बंद समाज में भी ये मामले कम नहीं होते। छह महीने की बच्ची से लेकर साठ साल तक की वृद्धा से बलात्कार के पीछे क्या जींस है? लोगों की पिछड़ी मानसिकता तो सानिया मिर्जा के स्कर्ट की लम्बाई के पीछे ही पड़ गई। लोग यह नहीं सोचते कि अगर सानिया लम्बा स्कर्ट पहनेगी, तो खेल में पिछड़ जाएगी। राधाकृष्ण को पूजने वाले लोगों ने भी तब बखेड़ा खड़ा कर दिया, जब तमिलनाडु में खुशबू ने विवाह पूर्व सम्बन्धों का समर्थन कर दिया जैसे विवाह पूर्व शिते तो इस देश में होते ही नहीं। यहाँ के प्रगतिशील पति भी पत्नी के विवाह पूर्व रिश्ते को पचा नहीं पाते। इसका उदाहरण 14 अगस्त, 2009 को ग्रेटर नोएडा में देखने को मिला, जब टेलीविजन के एक विवादास्पद रियलिटी शो की तर्ज पर एक व्यक्ति ने अपनी पत्नी से पूछा कि, 'क्या विवाह पूर्व किसी गैर मर्द से तुम्हारे शारीरिक सम्बन्ध रहे हैं?' पत्नी द्वारा 'हाँ' कहने पर पति को गहरा सदमा लगा और रात में उसने खुदकुशी कर ली।

आज सेक्स की दुनिया में स्त्री ने जो छोटी-सी पहचान हासिल की है, उसे भी परम्परावादी पतन का नाम देते हैं। कैमरे फोन के दुरुपयोग, बाजार में पोर्नोग्राफी की बढ़ती माँग की वजह वे स्त्री की सेक्स स्वतन्त्रता को ठहराते हैं। इसी कारण वे स्त्रियों पर ड्रेस कोड लगाते हैं तथा उनके वेलेन्टाइन डे मनाने और पबों में जाने के विरोधी हैं। पर वे इसे रोक पाने में भी असमर्थ हैं, क्योंकि समय तेजी से आगे बढ़ रहा है। आज अभिनेत्रियाँ पटकथा को जरूरत कहकर जरूरत से ज्यादा देह प्रदर्शन कर रही हैं। क्या वे नहीं जानती कि उनके देह दर्शन के लिए ही ऐसी पटकथाएँ लिखी जा रही हैं? 8अक्टूबर, 2009 में दुनिया की नंबर वन खिलाड़ी अमेरिका की सेरेना विलियम्स ने खेल पत्रिका ईएसपीएन के आवरण पृष्ठ के लिए नग्न तस्वीर खिंचवाई थी जो विवाद का कारण बन गई। 6अक्टूबर, 2009 को साउथ कारोलिया यार्क की एक महिला को अपने घर के लॉन में टॉपलेस घूमने के आरोप में गिरफ्तार किया गया, क्योंकि सेक्स की आजादी के नाम पर कोई भी देश न तो फूहड़ देह प्रदर्शन की इजाजत दे सकता है और न ही सेक्स अपराधों को क्षमा कर सकता है। 1 सितम्बर, 2009 को भारतीय मूल के अमेरिकी डिजाइनर आनन्द जॉन को लॉस एंजीलिस स्थित सुपीरियर कोर्ट ने मॉडल बनने की तमन्ना रखने वाली सात युवतियों को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

शिकार बनाने और उनका यौन शोषण करने के आरोप में 59 साल की कैद की सजा सुनाई है। वहीं पत्नी को सेक्स के लिए मजबूर करने वाले मलेशियाई नागरिक को पाँच साल की सजा दी गई है। देश में पति द्वारा पत्नी के साथ बलात्कार के खिलाफ लागू नए कानून के तहत यह अभियोजन का सम्भवत: पहला सफल मामला है। 2007 के कानून के तहत इसे पहली सजा मानी जा रही है। यह कानून पति द्वारा पत्नी को जान से मारने की धमकी देकर अथवा उसे चोट पहुँचाकर सेक्स के लिए मजबूर करने पर सजा का प्रावधान है। गौरतलब है कि अपनी पत्नी को अप्राकृतिक मैथुन के लिए मजबूर करने को लेकर इस व्यक्ति को और दस साल की जेल और तीन कोड़े मारने की सजा दी गई है। मलेशिया में अप्राकृतिक मैथुन (पत्नी की इच्छा से भी) पर अधिकतम बीस वर्ष की सजा तय है। (राष्ट्रीय सहारा 7 अगस्त, 2009)

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस तरह हम देख रहे हैं कि हर देश सेक्स अपराधों को रोकने के लिए तमाम कठोर कानून बना रहे हैं फिर भी सेक्स अपराध बढ़ते जा रहे हैं। सिर्फ अमेरिका में अरबों डॉलर की पोर्न इण्डस्ट्री है जिसकी नज़र अब भारत पर है। यह इण्डस्ट्री अब इण्डियन पोर्न ब्राण्ड को खड़ा करने में जुटी है। इस काम में उसकी मदद विदेशों में रहने वाले भारतीय कर रहे हैं। एक ओर ये विदेशों में बसी भारतीय लड़कियों को पोर्न इण्डस्ट्री में काम करने को फुसलाने के लिए संजाल खड़ा कर रहे हैं, तो दूसरी ओर भारत में भी अपने एजेण्ट नियुक्त कर रहे हैं ताकि भारत की लड़कियों की पोर्न फिल्में उन्हें सप्लाई कर सके। क्या यह जाल बिना धन के बिछाया जा सकता है और भारत के किस वर्ग और किस सामाजिक पृष्ठभूमि की लड़की इस जाल में फँसती हैं? क्या व्यर्थ के पाखण्डों को छोड़कर इस पर विचार नहीं किया जाना चाहिए?

परिवारों से कटी, गरीब और अपने कट्टर पालन-पोषण के विरुद्ध विद्रोह करने वाली लड़कियाँ अक्सर ऐसे लोगों के जाल में फँस जाती हैं, जो उनकी देह को दलदल में उतार देते हैं, जहाँ से मुक्ति आसान नहीं होती।

सेक्स अपने-आप में गलत नहीं। वह कुदरत का दिया अनुपम वरदान है। किसी भी धर्म में सेक्स को गलत नहीं माना गया है, क्योंकि वह सृजन का भी आधार है। जिस सम्बन्ध से एक शिशु जन्म लेता है, वह पाप हो ही नहीं सकता। अपोजिट सेक्स के प्रति आकर्षण भी स्वाभाविक है, पर मनुष्य ने किसी भी चीज को स्वाभाविक रहने ही कहाँ दिया है? उसने तो प्रकृति का ही रेप कर दिया है। सेक्स जैसी सुन्दर भावना को विकृत बना दिया है। उसका व्यापार करने लगा है। अप्राकृतिक मैथुन को महत्व देने लगा है। बच्चे और जानवर भी उसकी विकृति से नहीं बचे हैं। क्या इस विकृत सेक्स से वह आनन्द मिल सकता है, जिसे ब्रह्मानन्द कहा जाता है? सेक्स में स्त्री और पुरुष अपनी सम्पूर्ण कोमल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-IKS Grant

भावनाओं के साथ एक-दूसरे से जुड़ते हैं। दोनों के मन एक-दूसरे को सम्पूर्ण सुख देने की भावना से लबरेज रहते हैं। सेक्स यदि विकृति होता, तो आदिकाल से अब तक मनुष्य को बाँधे नहीं रहता। सेक्स स्वतन्त्र होता है। वह बन्धन नहीं मानता, पर इतना स्वछन्द भी नहीं होता कि सारी मानवता को ताक में रख दे। वह हिंसक पशु भी नहीं होता। उसमें कोमलता, उदारता और प्रेम समाहित होता है। वह अपने साथी को कष्ट पहुँचाकर नहीं, उसके सहयोग से सुख प्राप्त करता है। सेक्स शिक्षा इसलिए जरूरी है कि सेक्स के मनोवैज्ञानिक पहलू को भी समझा जा सके वरना सेक्स का सेंसेक्स कभी भी इतना गिर सकता है कि स्त्री-पुरुष का स्वाभाविक प्रेम खत्म हो जाएगा।

सृजन, ई.डब्ल्यू.एस.-210, शास्त्रीनगर
चतुर्थ चरण, चटगाँव, गोरखपुर-09 (उ.प्र.)

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिन्दी उपन्यासों में अस्मिता-विमर्श के स्वर

■ *शिप्रा शर्मा*

स्वातंत्र्योत्तर साहित्यिक परिदृश्य में अस्मिता के प्रश्न को लेकर जो विवाद का माहौल तैयार हुआ, असमंजस की स्थितियाँ कायम हुईं और गम्भीर सामाजिक समस्याओं को जैसे सिकोड़ कर देखा गया उसका वाजिब जवाब यथार्थवाद ही है। व्यक्ति की अस्मिता को उसके सामाजिक सन्दर्भों में ही सम्पूर्णता में परखा जा सकता है। किसी व्यक्ति या उसकी अस्मिता का समग्र अध्ययन उसे सामाजिक सन्दर्भता से काटकर नहीं किया सकता। इतिहास में यह दर्ज है कि समाजवादी यथार्थवाद के लेखकों ने तो पाठक को यहाँ तक उद्बुद्ध किया है कि वह अपने संगठित प्रयासों से पीड़ित मनुष्यता को एकजुट करता हुआ उन व्याख्याओं को सदा-सदा के लिए दफना दे जो जीवन, समाज तथा मनुष्य में व्याप्त घिनौनेपन के लिए जिम्मेदार है। यथार्थवादी लेखकों की कृतियाँ अपनी चित्रणगत क्षमता तथा दृष्टिगत व्यंजना में प्रत्येक जागरूक पाठक को झकझोरती हैं, उन्हें विकृत या कुत्सित वास्तविकता के गर्त में रस लेने के लिए डुबोती नहीं। यथार्थवाद की यही समर्थता उसे मनोविश्लेषण वादियों और प्रकृतवादियों से कहीं अधिक पाठकीय और आलोचकीय स्वीकृति प्रदान करती है। इसलिए यह मानने में संकोच नहीं होना चाहिए कि दलित और स्त्री प्रश्न की परिधि से बाहर घटित होने वाले विमर्श नहीं हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में इन विमर्शों से जुडे जो उपन्यास चर्चित हुए वे दलितों और स्त्रियों की समस्याओं को बहस के केन्द्र में लाने का प्रयास कर प्रकारान्तर से यथार्थवादी कला की सीमाओं का ही विस्तार कर रहे थे। आप इस प्रयास से वे झूठे असमंजसों के खिलाफ सत्य और सही समाधान ढूँढने की कोशिश ही कर रह थे और मनुष्य को सचेत और जागरूक कर रहे थे।

1994 में प्रकाशित डॉ. जयप्रकाश कर्दम की कृति छप्पर से पहले हिन्दी में दलित विमर्श पर कोई बहुचर्चित औपन्यासिक कृति नहीं आई थी। इस रचना के प्रकाशन के साथ ही दलित आन्दोलन की दशा, दिशा और संभावनाओं के अनेक चित्र उपस्थित हुए। उपन्यास की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2095-Grant

Gandhi Memorial College Chhatarpur

कथा के माध्यम से डॉ. कर्दम ने दलित जीवन की पीड़ा और विडम्बना आदि को बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। छप्पर इस स्वर को प्रमुखता से उठाता है कि किसी भी अन्य व्यक्ति की तरह दलितों को भी स्वतंत्रता और स्वायत्तता के अधिकार मिलने चाहिए। इस उपन्यास में यह तथ्य मजबूती के साथ रखा गया है कि दलितों की दीन-हीन दशा के लिए जितनी व्यवस्था जिम्मेदार है उतनी ही धार्मिक स्तंभों पर आधारित पारंपरिक रूढ़िवादी मानसिकता भी, जिनकी उलझी हुई अप्राकृतिक मत-मान्यताओं ने विकास के सभी मार्गों को अवरूद्ध कर दिया है। ईश्वर की सत्ता आत्मबल और विश्वास अर्जित करने के लिए स्वीकार की गई थी न कि विविध आडम्बरों के माध्यम से शोषण के लिए। उपन्यास का प्रमुख पात्र चंदन यदि उच्च शिक्षा पाकर ज्ञान के क्षेत्र में उन्नति करता है तो ब्राह्मण पंडित की पोथी के अनुसार यह समाज का संतुलन और अनुशासन भंग करने का अक्षम्य अपराध होगा। यदि आजादी के बाद की संवैधानिक स्थिति को छोड़ दिया जाए तो हम पाएंगे कि समाज का तथा कथित उच्च वर्ग सदैव धर्म का भय दिखाकर दलितों का खून चूसता रहा है, उनकी उन्नति के मार्ग में बाधाएँ खडी करता रहा है। इसलिए कर्दम ने दलित साहित्य के वैचारिकता को बिल्कुल भिन्न धरातल से रूपायित करने का प्रयास किया। इस दलित साहित्य की प्रतिमान को उन्होंने परम्परागत हिन्दी साहित्य के मूल्यों और प्रतिमानों से अलग करके दिखने की माँग की। कर्दम लिखते हैं-'दलित साहित्य उन प्रस्थापित मूल्यों, आस्थाओं, विश्वासों और मान्यताओं के खिलाफ एक मुहिम है जो मनुष्य मनुष्य के बीच विषमता और भेद पैदा करते हैं जाँति-पाँति, ऊँच-नीच आदि को बढ़ावा देते हैं...। दलित साहित्य ईश्वर, आत्मा, भाग्य आदि को नकाराता है। वह वेदों को अपौरुषेय नहीं मानता वह अवतारवाद के खिलाफ है। मानव की प्रगति और उन्नति में विश्वास करता है।'

उपन्यास का प्रमुख पात्र चन्दन एक मेधावी छात्र है और उच्च शिक्षा अर्जित कर समाज के उत्पीड़ित वर्ग की उन्नति के लिए कार्य करना चाहता है। इस चरित्र के माध्यम से कर्दम यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि दलित आन्दोलन की बागडोर शिक्षितों और दलित बुद्धिजीवियों के हाथों में होनी चाहिए। चन्दन क्षणिक या अल्पकालिक योजना पर कार्य नहीं करता इसलिए आन्दोलन में किसी अप्रिय घटना पर कोई भी प्रतिक्रियात्मक कदम नहीं उठाता। चन्दन की लक्ष्य प्राप्ति घृणा या बदले की भावना से प्रायोजित नहीं होती है बल्कि एक सुखमय समाज के निर्माण के लिए प्रसास से होती है।

डॉ. कर्दम ने कमला जैसी एक सशक्त दलित स्त्री पात्र द्वारा स्त्रियों की हिम्मत, जिजीविषा और हौसले का सटीक उदाहरण सामने रखा है। कमला स्त्री होने के नाते सामाजिक शोषण का दोहरा दंश झेल रही है लेकिन संघर्ष करने से पीछे नहीं हटती। दलित पुरुष जहाँ शोषण के तहत आर्थिक शोषण की भयावहता झेलते हैं वहीं स्त्रियाँ समाज में अपने दोयम दर्जे के कारण आर्थिक, शारीरिक और मानसिक शोषण भी झेलती हैं।

CC-0 Adv. Gauri Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

डॉ. कर्दम ने इस उपन्यास में कई पात्रों को एक सशक्त और स्वतंत्र व्यक्तित्व दिया है। उपन्यास के शिल्प का कसाव, प्रभावोत्पादक और पात्रानुकूल कथोपकथन, बिम्बात्मक भाषा कथा संगठन को सुस्थिर रखती है लेकिन पात्रों को सशक्त और स्वतंत्र व्यक्तित्व देने के क्रम में, पाठक के समक्ष एक आदर्श रखने की उत्कंठा में कथा में कई ऐसे घटनाक्रमों का भी समावेश हो गया है जो कहीं से भी विश्वसनीय नहीं लगते। जैसे कि गाँव के ठाकुर साहब का ग्लानि से भरकर आत्महत्या करने जाना और सुक्खा का अचानक वहाँ पहुँचकर उनकी जान बचाना। इसी तरह काणें पंडित का गाँव छोड़ कर चले जाना। कमला द्वारा सभा में फिल्मी ढंग से चन्दन और रजनी को एक करने के लिए जान देना। ये घटनाएँ यथार्थ में इतनी आसानी से संभव नहीं लगती।

इन कमियों को अगर छोड़ दिया जाए तो निश्चय ही यह उपन्यास हिन्दी साहित्य में बदलाव की लहर का प्रणेता सिद्ध होता है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में स्त्री प्रश्न को लेकर जिस उपन्यास ने संवाद और चिन्तन के गहरे आयामों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया वह है मैत्रेयी पुष्पा द्वारा रचित 'चाक।' आज भी भारतीय समाज पितृसत्तात्मक है और स्त्री उस समाज में अन्या। आज भी उसे संरक्षण में जीना पड़ता है और स्त्री बनने के गुण उसे सीखने पड़ते हैं। उसकी नियति पिता, भाई और पति के हाथों में कैद है। इन्हीं परिस्थितियों में फँसकर न तो उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व का विकास हो पाता है और न ही वह अपने अंतर्निहित शक्ति से परिचित हो पाती है। मैत्रेयी पुष्पा चाक माध्यम से स्त्री की इस आंशिक छवि से अलग एक मुकम्मल छवि को सामने रखती हैं और वह भी पश्चिमी उत्तर प्रदेश के ग्रामीण सामाजिक परिदृश्य के माध्यम से।

यशपाल ने भारतीय समाज में स्त्री की स्वाधीनता के प्रश्न पर विचार करते हुए अपनी पुस्तक मार्क्सवाद में लिखा है कि 'पुरुष समाज के हाथ में जितने भी साधन धर्म और रीति-रिवाज के रूप में थे उनसे स्त्री को पुरुष के अधीन रहकर चलने की शिक्षा दी गई। पराधीनता और शासन को स्वीकार करना ही उसके लिए सम्मान और आदर की कसौटी निश्चित की गई। उसे समझाया गया, यहाँ चाहे वह पुरुष का मुकाबला भले ही कर ले, परन्तु परलोक में उसे पछताना पड़ेगा क्योंकि उसकी स्वतंत्रता धर्म के विरुद्ध है।' चाक स्त्री जीवन की इन समस्याओं से पूर्णतः वाकिफ है। पुरुषवादी व्यवस्था के दमनपूर्ण चरित्र का कच्चा चिट्ठा है चाक उसमें सिर्फ स्त्री की पराधीनता का चित्र ही नहीं उकेरा गया है बल्कि नारी मुक्ति की आकांक्षा को भी वाणी दी गई है। मैत्रेयी पुष्पा ने जिस खूबी के साथ व्यक्तिगत सम्पत्ति के चरित्र और औरत की जिन्दगी पर उसके प्रभाव को पेश किया है वह उलझनों को मिटा देने वाला है। इस उपन्यास में स्त्री की आर्थिक समानता और स्वतंत्रता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

की जोरदार वकालत है। मैत्रेयी पुष्पा की दृष्टि में नारी के शोषित होने की वजह सिर्फउसका
Gandhi Memorial College Of Education Bantala Jammu
आर्थिक और शैक्षिक पिछड़ापन ही नहीं है बल्कि धार्मिक सांस्कृतिक जकड़बंदी भी है।

चाक रूपी पितृसत्ता की जमीन पर मिट्टी के छोटे-छोटे लोंदों के रूप में स्त्री संघर्ष की कथा इस उपन्यास में उभरती है। इस संघर्ष को रचती हैं सारंग, रेशम और शकुन्तला जैसी स्त्रियाँ, जिनमें संभावना है जीवन संघर्ष के हर क्षेत्र में अपनी छाप छोड़कर नया इतिहास रचने की। ऐसा नहीं है कि चाक में पितृसत्ता का सिर्फ शुद्ध सामान्यीकरण कर दिया गया है। एक ओर पितृसत्ता का ऐसा स्वरूप है जो स्त्री के विकास का बाधक है, स्त्री की नियति का नियंता स्वयं को मानता है, उसे निज संपत्ति मानकर उसके व्यक्तित्व को अपने घर की तिजोरी में सुरक्षित रखना चाहता है। इसके पक्षधर हैं ग्राम प्रधान फत्ते सिंह, साधजी, दरोगा गिरीश त्यागी और 'प्रगतिशील विचाधारा के पोषक' रंजीत जैसे पुरुष। इन्हें स्त्रियाँ एक्जीविशन में ज्यादा अच्छी लगती हैं। दूसरी ओर श्रीधर, गजाधर और भँवर जैसे पुरुष हैं जिनके लिए स्त्री पहले मनुष्य है और वह उन सभी मानवीय अधिकारों की अधिकारिणी है जो पुरुषों के पास हैं। स्पष्ट है कि चाक का स्त्री विमर्श यह मानता है कि स्त्री को इन जंजीरों से मुक्ति अस्मिताई राजनीति से नहीं बल्कि समाज के सभी प्रगतिशील तत्वों के साथ में लेकर ही संभव है। निश्चय ही सामंती मन:स्थिति से मुक्त पुरुषों की भी इसमें भूमिका होगी। उपन्यास का चरित्र श्रीधर जिसका सारंग से आत्मिक प्रेम है उसकी शक्ति और प्रेरणा बनकर उसे हर पल आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। उसका प्रेम विध्वंसक नहीं सृजनात्मक है। ग्राम प्रधान के चुनाव में सारंग को खड़ा करने के लिए वह प्रयास करता है। वह कहता है कि मैं चाहता हूँ, भँवर चाहता है, यह गाँव चाहता है और सारी औरतें भी चाहती हैं कि वह यह चुनाव लड़े। वह भी अपने लिए नहीं सिर्फ गाँव के लिए प्रधानी करने के लिए नहीं, सेवकाई करने के लिए। मैत्रेयी पुष्पा ने बीसवीं सदी की स्त्री के जीवन की वास्तविक समस्याओं के तह में जाकर उसे उसका उचित स्थान दिलाने का प्रयास किया है। उनकी दृष्टि में नारी कोई गूढ़ संदेहात्मक विषय नहीं है बल्कि पुरुष का पूरक है, ठीक वैसे ही जैसे पुरुष स्त्री का पूरक है।

चाक वस्तुत: पितृसत्तात्मक व्यवस्था की अमानवीयता के विरुद्ध सहमी हुई और धीरे -धीरे सर उठाती हुई स्त्री के संघर्ष का दस्तावेज है। स्वतंत्रता के लिए स्वेच्छा से जीने के लिए, स्वेच्छा से वर तलाशने के लिए, अपनी भावनाओं और इच्छाओं का सम्मान किए जाने के लिए वह संघर्षरत है। मैत्रेयी पुष्पा की स्त्रियाँ पितृसत्तात्मक व्यवस्था से लड़ते हुए परम्परागत लीक से हटकर भी समाज से भागती नहीं हैं बल्कि अपनी जगह की तलाश करती हैं उसका निर्माण करती हैं। सारंग विद्रोह करती है लेकिन विपरीत परिस्थितियों में अपने परिवार की रक्षा भी करती है। वह मौन विद्रोहिणी है, छोटी-छोटी कलहों में पड़कर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
अपना विवेक खोने वाली या लड़ाई को कमजोर करने वाली नहीं। यह एक लम्बी लड़ाई है जिसे विलग होकर नहीं, सब कुछ समेटकर लड़ने की जरूरत है। उपन्यास में स्त्रियों के जीवन से सम्बन्धित अन्य कई समस्याओं को बहुत व्यवस्थित और यथार्थ ढंग से उठाया गया है। पूरी संरचना में अगर कोई चीज थोड़ी विवादित लगती है तो वह है देह का विमर्श जो निश्चय ही स्त्री की गुलामी की एक महत्वपूर्ण कड़ी है उसकी देह चाक की रेशम इस देह की स्वाधीनता की पहल करती है। वह एक विधवा स्त्री है जो परपुरुष से सम्बन्ध स्थापित करती है और पितृसत्तात्मक व्यवस्था को ठेंगा दिखाते हुए अजन्मे बच्चे को अपना नाम देना चाहती है। इसी तरह सारंग और श्रीधर के प्रसंग द्वारा मैत्रेयी पुष्पा ने स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को नए सिरे से सोचने की पेशकश की है। श्रीधर से सारंग भावावेश में यौन सम्बन्ध स्थापित करती है जिसका कोई भी अपराधबोध नहीं है। लेखिका उपन्यास में देह सम्बन्धों को भी नैतिक-अनैतिक के घेरे से अलग रखने की वकालत करती दिखाई देती हैं लेकिन इन माँगों के सन्दर्भ में यह विचारणीय है कि कहीं स्त्री को पितृसत्ता की गुलामी से निकालकर हम उपभोक्तावाद और बाजारवाद की गुलामी की जंजीरों में तो नहीं ढकेल रहे हैं।

उन्नीसवीं सदी के बाद से ही विश्व और साहित्य को यथार्थ के आईने से देखने का जो एक नया नजरिया विकसित हुआ वह भारतीय साहित्य में प्रवेश करने के बाद भी उत्तरोत्तर प्रगति ही करता रहा। इसके पीछे निश्चय ही सबसे प्रमुख कारण था सामाजिक सरोकारों के सन्दर्भ में यथार्थवाद की वैज्ञानिक दृष्टि, मजबूत विचारधारा और गहरी संवेदनशीलता। तीसरी दुनिया के देशों को उपनिवेशवाद के बाद के दौर में भी विभिन्न किस्म के शोषण उत्पीड़न का सामना करना पड़ा और लगातार करना पड़ रहा है। उत्पीड़ित समाज को अभिव्यक्ति के लिए जिन व्यंजनाओं, प्रतीकों, सन्दर्भों की जरूरत थी वह यथार्थवाद ही सबसे बेहतर तरीके से उपलब्ध करा सकता था। इसलिए हिन्दी के कई स्वांत्र्योत्तर उपन्यासकार भिन्न-भिन्न अस्मिताओं के सवालों को उठाते हुए भी यथार्थवाद का पल्ला नहीं छोड़ना चाहते।

आजाद भारत के स्वरूप में बदलाव तो काफी आए लेकिन उत्पीड़ित समाज और आर्थिक शोषण का जाल भी लगातार बढ़ता गया। सामाजिक परिवर्तन ने स्वातंत्र्योत्तर भारत में साहित्यिक अभिव्यक्ति के तरीकों में भी काफी परिवर्तन उपस्थित किया लेकिन सामाजिक उत्पीड़न ने यथार्थवाद की जरूरत को भी बनाए ही रखा। हाँ, यह जरूर हुआ कि यथार्थवाद के भी कई रूप हमारे सामने आने लगे। यथार्थवाद के इन रूपों का विकास उसकी अद्भुत क्षमता का ही प्रमाण है। यथार्थवाद की इसी क्षमता की वजह से हिन्दी के प्रमुख और चर्चित स्वांतत्र्योत्तर उपन्यासकारों को अपने उपन्यासों में उसका आधार लेना

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही पड़ा चाहे समाज में किसी भी मुद्दे, किसी भी आस्था या किसी वर्ग को विषय बनाकर क्यों न चले हों। स्वातंत्र्योत्तर भारत में ज्यादातर वही उपन्यास कालजयी बन सके जिन्होंने कहीं न कहीं यथार्थ के पल्ले को पकड़ा रहा–मैला आँचल में आंचलिक यथार्थ की प्रामाणिक प्रस्तुति हुई, तमस में सांप्रदायिकता की क्रूरता और कुरूपता को उघाड़ा गया और बिस्रामपुर का संत में राजनीतिक भ्रष्टाचार पर से पर्दा हटाया गया। छप्पर और चाक की सफलता के पीछे भी यही कारक हैं। छप्पर में दलित जीवन की विड़बनाओं और शोषण को अभिव्यक्ति मिली, चाक में पितृसत्ता की चक्की में सदियों से पिस रही स्त्री को जुबान मिली है और ऐसे ही और भी जाने कितने उपन्यास हैं जिनमें और भी तमाम गहन सामाजिक संदर्भों को यथार्थवादी कला के साँचे में पेश किया गया। यह सही है कि दलित और स्त्री जैसे प्रश्न को लेकर चलने वाले रचनाकारों में से कई अपने उपन्यास में सिर्फ यथार्थवाद से बँधकर नहीं रहे बल्कि अभिव्यक्ति के और भी तरीके अपनाए कई रचनाकार यथार्थवाद को अपनाते हुए भी उसे सही रूप में प्रस्तुत नहीं कर पाए। किन्तु इस लम्बे दौर में यह बात साफ हो गई कि जब तक समाज में शोषण और भ्रष्टाचार का बजूद रहेगा यथार्थवाद भी हमारे सामने किसी न किसी रूप में अस्तित्ववान रहेगा।

ईई-164/402, सेक्टर-2,
साल्टलेक, कोलकाता–700091, फोन: 033-23212898

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक हँसी की उम्र

■ *डॉ. रजनीश भारद्वाज*

पिछले दिनों जयपुर में आयोजित एक गोष्ठी में एक वक्ता ने कहा कि कहानी जीवन के असली मुद्दों से दूर हटती जा रही है और मनोदशाओं को ही कहानियों का कथ्य बनाया जा रहा है। नहीं जानता कि इसमें कितना सत्य है पर मुझे ऐसा जरूर लगता है कि कुछ कहानीकारों की कहानियों को योजनाबद्ध तरीके से उठाने का प्रयास किया जा रहा है। एक आलेख पढ़कर लगा कि जैसे इस आलेख को किसी भी कहानी पर चस्पा किया जा सकता है। बस नाम बदलने की जरूरत है। इसलिए यह माँग भी की जा रही है कि अमुक जी की कहानी पढ़ने के लिए कुछ खास तरह के पाठक की जरूरत है। यदि कोई कहानीकार यह मानकर कहानी लिखता है कि उसे पढ़ने के लिए खास तरह के पाठक की जरूरत है, तो जाहिर है कि उसे अपनी रचना पर विश्वास नहीं है।

दरअसल कहानी को सबसे पहले और सबसे अन्त में कहानी होना चाहिए अर्थात् उसमें कहानीपन की रक्षा हर हाल में होनी चाहिए तभी पाठक उसके आस्वाद में डूब सकता है। इस दृष्टि से डॉ. लक्ष्मी शर्मा के 'एक हँसी की उम्र' संकलन की कहानियाँ सबसे पहले हर श्रेणी के पाठक को बाँधे रखने की क्षमता रखती है। 'एक थी लड़की' की नलिनी की वेदना पाठक के मन में उसी प्रकार भारी पड़ती है जैसे लेखिका को लगता है कि, 'कई बार लेखक की लेखनी से बाहर हो जाते हैं।' नलिनी की पीड़ा पाठक को आन्दोलित भी करती है और उसके मन में पार भी चली जाती है। शायद इसलिए नलिनी आत्महत्या कर लेती है कि उसकी संवेदना पर उसके हालात भारी पड़ने लगते हैं। इसी तरह 'खते मुतवाजी' कहानी में व्यक्त प्रेम कितना गहरा तथा कितना अशारीरिक है कि स्वयं राबिया इस प्रेम को झुठला नहीं पाती। यह जानते हुए भी कि उसके मन में प्रेम ऐसे मरीज के लिए उगा है जो जीते हुए भी इस संसार में नहीं है। इसका कारण राबिया खुद नहीं जानती। वह किस कशिश में बँधी चिट्ठी शाह बाबा की दरगाह पर मन्नत माँगने जाती है और लिफाफे को दरगाह पर रखकर मन्नत माँगती है, 'या

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अल्लाह, उसकी मुराद ही पूरी कर देना। बस, मुझे और कुछ नहीं चाहिए।' यह कहानी की खूबी है कि पाठक राबिया के साथ दरगाह तक चला जाता है और वह उसकी मन्नत में शरीक हो जाता है। इस दृष्टि से 'मोक्ष' कहानी तो हमारे पूरे समाज की विडम्बनाओं को रूपायित करती है और मामी के संघर्षशील चरित्र के माध्यम से समाज के असली चेहरे को पाठक के समक्ष रख देती है। मामी सब-कुछ सहकर भी अपनी दृढ़ता को नहीं खो पाती और प्रण करती है, 'मैं तो ऊँ काली रात में बस एक ही बात गाँठ बाँध ली कि जो मेरे पे हुई सो हुई, पण मेरे जीवतां कोई और लुगाई पे जुलम ना होण दूँगी, अर रामजी ने मेरी बात रख भी ली।' मामी ने जितना सहन किसा वह इस समाज की ही अन्तर्ग्रन्थि थी जो उसे जीवनभर चुप रखे रही। जब वह अपनी कहानी का रहस्य बताती है, तो पाठक स्तब्ध रह जाता है। यह स्तब्धता ही इस कहानी की मूल संवेदना है और मामी बहुत कम कहकर भी कितना अधिक कह जाती है कि पूरे समाज का चरित्र उजागर हो जाता है। 'जगराता' कहानी में हमारे अंधविश्वासों के पीछे छिपी मनोदशाओं का खुलासा करती है। हम जिसे बहुत दिव्य मानते हैं, वह कितना घिनौना होता है। यह इस कहानी से भली-भाँति प्रकट हो जाता है। 'एक हँसी की उम्र' कहानी के तीन अन्त कहानीकार स्वयं देती है और पाठकों को कोई भी अन्त चुनने के लिए स्वतन्त्र कर देती है पर क्या पाठक वाकई स्वतन्त्र हो पाता है। यह कहानीकार की कुशलता है कि तीन अन्तों के बावजूद कहानी का एक ही अन्त है और वह बहुत त्रासद है। कथ्य के स्तर पर इस संकलन की कहानियों में जो वैविध्य है वह कहानीकार की जीवन दृष्टि और अनुभव दृष्टि का परिचायक है। 'अजब प्रेम की गजब कहानी', 'आत्माएँ', 'जन्म अवधि हम रूप निहारल', 'आंशकित आत्महत्या', 'मरीचिका', 'धन्धे का उसूल', 'स्टिंग ऑपरेशन' आदि सभी कहानियाँ कत्य के स्तर पर पाठक को उद्वेलित करती हैं और जीवन और समाज की उन विसंगतियों को रेखांकित करती हैं जिनसे हम प्राय: रू-ब-रू होते रहते हैं पर जीवन में उनकी अनदेखी करते रहते हैं पर ये कहानियाँ उन विसंगतियों पर हमें सोचने को विवश करती हैं।

सबसे बड़ी बात यह है कि लक्ष्मी शर्मा के पास कहानी कहने का बड़ा प्रभावी तरीका है, इसलिए शिल्प और भाषा के स्तर पर ये कहानियाँ हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं। जैसे 'एक हँसी की उम्र' कहानी में एक सीधे-सादे से कथानक को लेखिका सर्वथा नया शिल्प देकर पाठक को ही निर्णायक बना देती है। 'स्टिंग ऑपरेशन' कहानी में उन्होंने आज रोजाना चल रहे ऑपरेशन की तकनीक का सफल प्रयोग करती हैं। 'खते मुतवाजी' शिल्प और भाषा की दृष्टि से एक बेजोड़ कहानी है। उर्दू का इतना सफल उपयोग किया गया है कि लगता ही नहीं कि यह कहानी उसी कहानीकार ने लिखी है जिसने 'मोक्ष' कहानी लिखी है जिसमें आँचलिक भाषा का प्रयोग इस कहानी को एक नई रंगत देता है। लगभग सभी

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative. Digitized by Sarayu Trust. Funding by Vidyanidhi Nigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानियाँ शिल्प के स्तर पर एक नई तरह से बुनी गई हैं और भाषा के विविध रूपों का सार्थक प्रयोग इन कहानियों में हुआ है।

लक्ष्मी का अंदाज-ए-बयाँ बिल्कुल अलग तरह का है और लगता है कि उनके पास कहानी कहने की नई-नई तरकीबें हैं, जिनका प्रयोग करना वे बहुत अच्छी तरह जानती हैं। उनकी ये कहानियाँ आश्वस्त करती हैं कि वे इस क्षेत्र में बहुत आगे जा सकती हैं, क्योंकि उनके पास अनुभव के साथ कहानी कहने का हुनर भी है।

पुस्तक : एक हँसी की उम्र
लेखिका : लक्ष्मी शर्मा
प्रकाशक : पंचशील प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर
मूल्य : 250 रुपए

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दौसा (राजस्थान)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सामाजिक बदलाव का महाराग

■ *विवेक कुमार मिश्र*

'सदी का महाराग' कवि उद्भ्रांत की बीसवीं शताब्दी की प्रतिनिधि कविताओं के संग्रह समय और सत्ता के सम्बन्धों को देखता भर नहीं बल्कि उस समय को रचने में अपनी छोटी ही सही पर सार्थक भूमिका का निर्वाह करता है। कवि उद्भ्रांत एक तरह से कविता को स्वांत सुखाय भरी यात्रा भर नहीं मानते। उनके यहाँ कवि कर्म कठिन शर्तों के साथ मनुष्यता के प्रति प्रतिबद्ध ईमानदार संवेदनतंत्र का नाम है। इस बात का खुलासा संचयन के वक्तव्य में कवि के द्वारा दिया गया कथन है–''कविता मेरे लिए एक बेहतर मनुष्य की खोज है। कविता मेरे लिए सामाजिक बदलाव का एक साधन भी है।'' यह अकारण नहीं है कि 'सदी का महाराग' का चयन और संपादन वरिष्ठ आलोचक डॉ. रेवतीरमण के द्वारा एक लम्बी भूमिका के द्वारा किया गया है। कवि की कविता का यहाँ उसके समय और समाज तथा सत्ता और राजनीति के अंतर्संबंधों को आलोचक की आँख से गुनकर और कवि के संवेदन तंत्र से सदी के महाराग को जानने–बूझने की बेचैनी जिस मानुस तंत्र में होगी उनके लिए यह पूरी शताब्दी का एक ऐसा महाराग है जिसमें मनुष्य ने अपने होने की कहानी को न केवल अपने हाथों से गढ़ा है बल्कि इसी गढ़ने की प्रक्रिया में उन सारे षड्यंत्रों और अंधेरों का पर्दाफाश किया गया है, जो मनुष्य विरोधी व्यवस्था को बनाने में दिन–रात संलग्न होते हैं। यह सदी का महाराग सनातन अंधेरे बनाम उजाले की अंतर्कथा है।

उद्भ्रान्त का कवि कर्म पौराणिक संकेतों से लेकर हमारी आज की दुनिया में कार्यरत मनुष्य और उसकी सामाजिक संरचना और राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृति और पर्यावरणिक संरचना के भीतर मनुष्य के द्वारा खोजे गए तमाम सत्य और रहस्यपूर्ण सत्यों से न केवल सामाजिक रिश्ते एवं समय को परिभाषित किया गया है अपितु पूरे समय के राग को जाना जा सकता है। उद्भ्रान्त के लिए शब्द सबसे बड़ा साधन बनकर सामने आता है। शब्द के द्वारा हजारों बातों और हजारों रिश्तों को मनुष्य की सामाजिकता के साथ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

परिभाषित किया जाता है। कवि लिखता है कि 'शब्द कमल/खिला है अर्थ के/ हजार दलों
Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
को लेकर (पृष्ठ 47, शब्द कमल)' यहाँ शब्द की पूरी अर्थ सम्पदा को मनुष्यता के इतिहास और उसकी सामाजिकता के बीच बुना गया है जिसके द्वारा एक शब्द अपने भीतर छिपे हुए हजारों अर्थ के साथ संस्कृति को प्रकट करता है और यह प्रकट करना ही शब्द और कवि कर्म की और शब्द के भीतर से खिला रहे समय की सार्थकता का प्रमाण है और यही प्रमाण सदी का राग बनता है और यह राग कब महाराग बन जाता है यह तो समय और शब्द ही बताएँगे। इन्हीं सत्यों से गुजरते हुए उनका कवि मन लगातार आमजन की आवाज को, उनके संघर्ष को अपनी कविता में रचता है। इसी संघर्ष को कवि मानबहादुर सिंह की हत्या में वे देखते हैं–"जनता के कवि थे, जनता के बीच रहे थे/जनता उनकी कविताएँ सुन प्रेरित होती/लाल क्रान्ति का परचम कविता में फहराता/आग उगलते शब्द पके हों भट्टी में ज्यों।" (पृष्ठ 55, एक भयानक दुर्घटना) आग उगलते शब्दों से खेलना केवल कवि कौतुक नहीं है या केवल यह कहकर बात को टाला नहीं जा सकता कि कविता में शब्द की क्रान्ति तो होती ही रहती है बल्कि यहाँ शब्द अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता के साथ मनुष्य के प्रति संवेदनात्मक रिश्ते को निभाते हुए प्राण तक दे जाते हैं। कवि की हत्या इस बात को इंगित करती है कि अंधेरे के सौदागर शब्द की सत्ता और संवेदना की सत्ता से कितना घबराए हुए हैं और इसी घबराहट से कवि की दुनिया इस दुनिया में पागलों की दुनिया को भी देखती है। पागलों की दुनिया इसी जीवन यथार्थ से निकलती है।

कई बार सत्ता और तन्त्र की मार से अभिशप्त मनुष्य मनुष्यता के उलट पागलपन की दुनिया में चला जाता है। यह पागलपन केवल दिमागी खराबी का उदाहरण नहीं है बल्कि हमारा तंत्र ठीक से काम नहीं कर रहा है। इसका संकेत भी पागलपन में मिलता है। कवि बड़े साफ शब्दों में लिखता है–"रहने के लिए अभिशप्त हूँ, पागलों की दुनिया में।" यह पागलों की दुनिया लोकतंत्र, सत्ता के अन्ध न्याय और सामाजिक अंधियारे में घिरे अकेले मनुष्य की पीड़ा का यथार्थ है। इसी यथार्थ की भूमि से इस पूरी व्यवस्था को बदलने के संकल्प सूत्र भी रचे जाते हैं। छोटी से छोटी जिन्दगी भी एक विकल्प की दुनिया रचकर पूरी शताब्दी को कृतार्थ करती है। सदी का महाराग केवल पीड़ा, वेदना, छटपटाहट और बेचैनी का राग नहीं है बल्कि पूरी सदी में मनुष्यता को बचाए रखने के लिए उठे हुए हाथ भी कविता की दुनिया रचकर पूरी शताब्दी को कृतार्थ करते हैं। तभी तो उद्भ्रान्त का कवि मन मनुष्य के इस तराने को गा उठता है–"जो वर्षों से अपने कंधों पर इस व्यवस्था को ढो रहे हैं। मेरा निश्चित ख्याल है दोस्तों इस देश की भुरभुरी मिट्टी के लिए क्रान्ति के बीज हो रहे हैं।" (पृष्ठ 64/यह अनहोनी नहीं है।)

21वीं सदी के दूसरे दशक की शुरुआत में पूरा देश महँगाई, भ्रष्टाचार, भुखमरी,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2085-Grant

Gandhi Memorial College of Education Bedilabad Jammu

बेरोजगारी और अनियंत्रित बाजार से संचालित है। यह 20वीं सदी में ही ठीक से इस नाटक तन्त्र को खेला गया होता तो शायद ये स्थितियाँ नहीं आतीं और हद तो यह हो गई कि आज सभी अपनी जिम्मेदारियों से मुक्त होकर नाटक-नाटक खेल रहे हैं। उद्भ्रान्त जी नाटक तन्त्र में लिखते हैं-'घना अंधेरा उसके चारों ओर था/उस समुद्र में गोता मारकर अचानक वह नीचे एकदम से उतर गया। (पृष्ठ 67)' यहाँ मनुष्य की उस जिजीविषा की ओर संकेत किया गया है जो उसे हर अंध व्यवस्था और तन्त्र से निकलने की बारीकी सिखाती है। यह बारीकी ही सारे नाटक तंत्रों में मनुष्य का सबसे कारगर हथियार है। मनुष्य अपनी इसी हकीकत से मनुष्य के खिलाफ खड़ी हर व्यवस्था से वह अपने को निकाल लेता है और केवल निकालता ही नहीं बल्कि मनुष्यता की यात्रा में अपने कदमों को आगे बढ़ाकर अँधेरे के तन्त्र को चुनौती भी देता है और तोड़ता भी है यह सारा कार्य कोई विशिष्ट सत्ता नहीं बल्कि आम आदमी के द्वारा किया जाता है जिसमें खुद कवि भी शामिल है प्रतिरोध की आवाज बनकर।

कवि केवल अँधेरे की दुर्दशा का ही चित्र नहीं खींचता बल्कि पूरे तंत्र को चाहे जितना भी अँधेरे से घिरा हो को साफ करने की, बदलने की और संघर्ष करने की शक्तियाँ जनता के हाथों में न केवल देता है बल्कि उनके साथ संघर्ष का भागीदार भी बनता है-''दोस्तों/कि ये गन्दे लोग अँधेरे के प्रवक्ता हैं/पक्षधर हैं अँधेरे के/और सूर्य इन्हें नष्ट करने पर तुला है (पृष्ठ 83, नाटक तंत्र)'' कहना नहीं होगा कि उद्भ्रान्त का कवि तन्त्र बहुत मुखर होकर व्यवस्था और तन्त्र के समानान्तर मनुष्य का पक्ष लेता है और मनुष्यता के इतिहास को आगे बढ़ाने में कवि कर्म का एक बड़ा पर्याय बनता है। इसी से वे मनुष्यता के लिए चारों दिशाओं एक ताजी हवा घोल देना चाहते हैं। वे लिखते हैं-''एक ताजी गन्ध भर दूँ सब दिशाओं में। (पृष्ठ 108, एक उजाला गीत)''

उद्भ्रान्त का पूरा कवि कर्म व्यवस्था और तन्त्र की जुगलबंदी से मनुष्यता के खिलाफ किए जा रहे षड्यंत्रों को पूरे सांस्कृतिक परिवेश में पहचानने की कोशिश है। उन्हें इस बात का अहसास है कि सभ्यता के मुखौटे लगाकर षड़यंत्रकारी शक्तियाँ शोषण को कितना जटिल और भयावह बना सकती हैं। इसे बीसवीं शताब्दी में लगातार संवेदनतंत्रों के द्वारा महसूस किया गया है कवि पौराणिक सन्दर्भों, संकेतों और प्रतीकों से पूरी बीसवीं शताब्दी के राग को समझने का एक आलोचनात्मक पाठ यहाँ तैयार किया है और इस राग से समय, समाज और सत्ता के अन्तर्सम्बन्धों, स्थानीयता, तात्कालिकता, सार्वदेशिकता और सार्वभौमिकता में समझा जा सकता है।

मनुष्य आज उस दौर में पहुँच चुका है जहाँ चरम भौतिकवाद और बाजारवाद उसकी समूची विरासत, संवेदना, ईमानदारी और नैतिक तन्त्र को खत्म कर देने के लिए बैठा हुआ

CC-0. Panjab University Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2022 Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है और इस दुष्ट, ज्वालाक्र भूर्त वातावरण से लड़ने के लिए निपट अकेले मनुष्य के पास अपनी मनुष्यता के अलावा और क्या औजार हो सकते हैं? मनुष्य कविता के रास्ते संवेदनतंत्र से पूरी व्यवस्था से कैसे और कितना लड़ पाएगा आदि मुद्दों पर विचार करते हुए आज कवि कर्म ज्यादा चुनौती भरा और कठिन होता जा रहा है। सदी का महाराग एक कवि की केवल भावनात्मक यात्रा भर नहीं है। इस महाराग में कविता, कथा, क्रूर यथार्थ और समय व सत्ता से अंतसंघर्ष में एक कवि के भाव संवेदन के साथ उसके आलोचनात्मक विवेक का तलस्पर्शी संकेत है जिससे बीसवीं शताब्दी की संवेदन यात्रा में प्रखर बौद्धिकता के साथ प्रेम की ऊष्मा और कोमलतम भाव तन्त्रों से समय के थर्मामीटर को परखते हुए बीसवीं शताब्दी का यह महाराग कविता की शक्ल में पूरी शताब्दी के इतिहास, कथा और संस्कृति को उन तमाम बदलावों और मोड़ों को अपने जज्बे में लिए हुए है जिससे शताब्दियों के भीतर मनुष्य की छवि निर्मित होती है।

जे.आर.-25, सिविल लाइन्स
झालावाड़-326001.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आधी दुनिया की थाह लेने की कोशिश

■ *रमेश खत्री*

बोधि प्रकाशन, जयपुर ने पुस्तक पर्व के दूसरे बंध के अन्तर्गत दस लेखिकाओं की रचनाओं को प्रकाशित किया। इनमें चार कहानी संग्रह, 'करतूते मरदां' (मन्नू भंडारी), 'एक औरत : तीन बटा चार' (सुधा अरोड़ा), 'केयर ऑफ स्वात घाटी' (मनीषा कुलश्रेष्ठ) और 'खिरनी की छांह' (प्रीता भार्गव), दो कविता संग्रह 'सदी के पार' (पद्मजा शर्मा), 'तनिक ठहरो समुद्र' (रंजना श्रीवास्तव) स्त्री विमर्श के रूप में कमल कुमार की 'कही अनकही', प्रमिला के पी की पुस्तक 'विमर्श और विस्तार', चित्रा मुद्गल के आलेखों को 'पाटी' के नाम से तथा ममता कालिया की 'पढ़ते, लिखते, रचते' के साथ इस बंध में प्रकाशित हुए हैं ।

वरिष्ठ कथाकार मन्नू भंडारी का कहानी संग्रह 'करतूते मरदां' में चार लम्बी कहानियां सम्मिलित हैं। कहानी 'एक बार और' उस दर्द को उकेरती कहानी है जिसमें स्त्री की दृष्टि से देखने का प्रयास किया गया है। 'यही सच है' अगर स्त्री के अंतस का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है तो 'एक बार और' कहानी स्त्री के भावनात्मक कोने का। संग्रह की एक कहानी 'स्त्री सुबोधिनी' में कामकाजी युवा लड़की के अपने बॉस से, जो सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित, बेहद व्यावहारिक और दुनियादार है प्रेम करने, सपनों के टूटने और अन्ततः छले जाने का बखान है। 'करतूते मरदां' में उनकी शैली चरम निखार पर नज़र आती है।

बंध का दूसरा कहानी संग्रह सुधा अरोड़ा का 'एक औरतः तीन बटा चार' है। इन कहानियों में सुधा अरोड़ा ने स्त्री मुक्ति के कुलबुलाते सपनों को अंकुराने की जमीन देने का प्रयास किया है। 'अन्नपूर्णा मंडल की आखिरी चिट्ठी' कहानी में नारी के मां बनने की उत्सुकता का चित्रण है। 'ताराबाई चाल : कमरा नम्बर एक सौ पैंतीस' कहानी में एक ऐसी स्त्री की वेदना उभरती है, जिसकी स्मृति में उसके पूर्व पति की दी गई यातनाएं जमीं हुई हैं।

मनीषा कुलश्रेष्ठ का कहानी संग्रह 'केयर ऑफ स्वात घाटी' बंध का तीसरा कहानी संग्रह है। इसमें कुल जमा सात कहानियां हैं,जो मनीषा कुलश्रेष्ठ के लेखन संसार के दरवाजे खोलती हैं। संग्रह की शीर्षक कहानी नारी मुक्ति का झंडा बुलंद किये हुए खड़ी है। कहानी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

बड़ी ही सशक्त है इसमें नारी जीवन के कई शेड्स उभरकर आते हैं।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'खिरनी की छाँह' प्रीता भार्गव की कहानी संग्रह है जो इस बंध का हिस्सा बना। इसमें उनकी शीर्षक कहानी ही है जो अस्सी पृष्ठों में पसरी है। यह कहानी भी नारी मुक्ति की कड़ी को आगे बढ़ाने का काम करती है।

इस बंद में कविता-संग्रहों की संख्या दो है। पहला संग्रह 'सदी के पार' पद्मजा शर्मा का है। इसमें उनकी 64 कविताएँ हैं। छोटी-छोटी कविताओं में पद्मजा जी अपने अंतर्मन को खोलने की कोशिश करती है जिसमें से निकलकर आता है नारी मुक्ति का स्वर। रंजना श्रीवास्तव का कविता संग्रह 'तनिक ठहरो समुद्र' में 48 कविताएँ हैं। इन कविताओं से छलकती भावनाएं अपनी गहराई में समुद्र को चुनौती देती है।

'पाटी' चित्रा मुद्गल के लेखों का संग्रह है। इसमें नौ आलेख है जो उनके अनुभर संसार में गोते लगाने को विवश करते हैं। चित्राजी का अनुभव संसार इतना विषद है कि उनमें से कई गलियां निकलती है और एक ऐसा कोलाज बनता है जिसके रंग काफी चटक हैं। ममता कालिया विविध रचनाओं के साथ, 'पढ़ते, लिखते, रचते' के साथ उपस्थित हैं। यह पुस्तक पांच खण्डों में विभक्त है। पहला खण्ड रचना प्रक्रिया, दूसरा खण्ड सफर सुहाने के अन्तर्गत गोआ, टूण्डला और नैनीताल का यात्रा वृतांत, तीसरे खण्ड में विचार के अन्तर्गत चार आलेख, चौथे खण्ड में नौ समीक्षाएं हैं, पांचवा खण्ड विविधा शीर्षक से है इसमें दो आलेख हैं। एक संस्मरण है और एक वेलेन्टाइन डे पर है।

स्त्री विमर्श के साथ कमल कुमार 'कही अनकही' के साथ उपस्थित हैं। इसमें दो खण्डों में कुल जमा इक्कीस आलेख हैं। पहला खण्ड भ्रम का आकाश और यथार्थ की जमीन शीर्षक से। दूसरा खण्ड प्रकृति के समीप स्त्रियां शीर्षक से। कमल कुमार की छवि कहानीकार, उपन्यासकार के रूप में रही है किन्तु इस पुस्तक में वे स्त्री विमर्श की गहन व्याख्या करती नज़र आती है। प्रमीला के.पी. 'विमर्श और विस्तार' में आलोचना के विभिन्न कोणों को तलाशती नजर आती है । इसमें संवाद, विमर्श और विस्तार के उपशीर्षकों में विभाजित सात आलेख महत्त्वपूर्ण हैं।

इस दूसरे बंध की दस पुस्तकों में से छनकर आता विचार स्त्री स्वायत्तता और स्वाधीनता को बल प्रदान करता है और बोधि प्रकाशन के दूसरे कदम को स्थिरता। इन पुस्तकों ने आधी दुनिया की थाह लेने की कोशिश की है, जो समय के निनाद को अपने पल्लू में बांधने जैसा है। पुस्तकें आकर्षक और संग्रहणीय है ।

संपादक नेट मेगजीन साहित्यदर्शन डाट काम
53/17, प्रतापनगर, जयपुर 302033
मो. : 09414373188

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2020-Grant

 Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चर्चा में कहानियां

■ *प्रस्तुति : असीम कुमार पंकज*

अभी गत दिनों राजधानी नई दिल्ली के चितरंजन पार्क में 'अभिव्यक्ति' संस्था की ओर से प्रख्यात कथाकार मिथिलेश्वर की कहानियों पर एक महत्वपूर्ण विचार-गोष्ठी आयोजित की गई। इस गोष्ठी के केन्द्र में नेशनल बुक ट्रस्ट नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कथा-पुस्तक 'मिथिलेश्वर : संकलित कहानियाँ' रहीं। उक्त पुस्तक मिथिलेश्वर की चुनी हुई 23 कहानियों का प्रतिनिधि कथा-संकलन है।

विदित है कि प्रबुद्ध महिलाओं की राष्ट्रीय संस्था 'अभिव्यक्ति' जिस किताब पर विचार-गोष्ठी आयोजित करती है, तत्काल उस किताब की 45 प्रतियां खरीदी जाती हैं। फिर 45 प्रबुद्ध पाठिकाएं उसे पढ़ती हैं। तदुपरांत उस किताब के लेखक को अपनी विचार-गोष्ठी में आमंत्रित कर उस पर पाठकीय विमर्श कायम करती हैं। हिन्दी में घटती पाठकीयता के इस दौर में वाकई यह अपनी तरह का बेहद उल्लेखनीय और प्रासंगिक आयोजन है। हिन्दी की अनेक महत्वपूर्ण कृतियों पर अभिव्यक्ति के ऐसे आयोजन हो चुके हैं। उसी कड़ी में यह ताजा आयोजन मिथिलेश्वर: संकलित कहानियां नामक पुस्तक पर केन्द्रित रहा।

कार्यक्रम की शुरुआत करते हुए प्रसिद्ध कथा लेखिका चन्द्रकान्ता ने प्रख्यात कथाकार मिथिलश्वेर का परिचय प्रस्तुत करते हुए उनकी कई कहानियों का विश्लेषण किया। मिथिलेश्वर के इस प्रतिनिधि कथा संकलन की लिखित समीक्षा के साथ वे उपस्थित थीं। उन्होंने मिथिलेश्वर की हरिहर काका, नरेश बहु, हत्यारों की वापसी, लापता, एक और मृत्युंजय, जमुनी तथा बाबूजी कहानी की विस्तृत चर्चा की। हत्यारों की वापसी को सिर्फ हृदय परिवर्तन की कहानी न मानकर उसे मानवीय संवेदना और वैचारिक जागरण की सशक्त कहानी करार दिया। 'हरिहर काका' कहानी में धन लोलुप समाज की बेनकाब होती क्रूरता का उन्होंने उद्घाटन किया। विधुर और अकेले हरिहर काका के खेतों को हड़पने के लिए न सिर्फ उनके सगे भाई उन्हें त्रस्त रखते हैं, बल्कि गाँव को ठाकुरबारी के महंत की गिद्ध दृष्टि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी उनपर लगी रहती है। चन्द्रकान्ता ने 'लापता' कहानी के संकेतात्मक अंत की सराहना की। उनके अनुसार संकेतात्मक अंत वाली कहानियाँ अधिक प्रभावकारी होती हैं। गाँव के सिवान पर पाए गए शत्रुदेश के एक सैनिक को गाँव वालों ने गाँव के ही एक सैनिक राम इकबाल के दालान में कड़ी पहरेदारी में रखा था। अगली सुबह उसे पुलिस को सुपुर्द करने की उनकी योजना थी। लेकिन वह सैनिक राम इकबाल के दालान से लापता हो गया। वह कैसे भागा? कहा गया? किसने उसे भगाया, इसका खुलासा कथाकार ने नहीं किया है। लेकिन पाठक समझ जाते हैं कि राम इकबाल की पत्नी ने ही उसे भगाया है। एक सैनिक की पत्नी ही किसी दूसरे देश के लापता सैनिक की पीड़ा समझ सकती है। 'एक और मृत्युंजय' कहानी है। चन्द्रकान्ता ने 'नरेश बहु' कहानी को ग्रामीण समाज द्वारा महिलाओं की प्रताड़ना और शोषण के खिलाफ आवाज उठाने वाली कहानी कहा। उस कहानी में अपने पति और अपने ग्रामीण समाज द्वारा त्रस्त एक स्त्री को वीरू नामक एक कर्मठ, साहसी और बहादुर युवक संरक्षण प्रदान करता है। 'नरेश बहू' कहानी की इस घटना का खुलासा करते हुए चन्द्रकान्ता ने कहा कि गाँव के कुटिल षड्यंत्रकारी जब वीरू को परेशान कर गाँव से भगा देते हैं तब विक्षिप्त-सी मन स्थिति में नरेश बहू गाँव से बाहर जामुन के एक पेड़ नीचे बैठ कर उसकी अनवरत प्रतीक्षा किया करती है। चन्द्रकान्ता के अनुसार यह प्रतीक्षा एक पीड़ित स्त्री द्वारा न्याय की प्रतीक्षा है। कहानी का यह पक्ष पाठकीय मन को झकझोर देता है।

चन्द्रकान्ता ने उक्त संकलन में संकलित मिथिलेश्वर की प्राय: सभी कहानियों को सशक्त बताते हुए 'बाबूजी' कहानी के प्रति अपनी असहमति व्यक्त की तथा कथाकार मिथिलेश्वर से यह जानना चाहा कि सामाजिक यथार्थ से अलग व्यक्ति मन की अराजकता पर ऐसी कहानी की रचना क्योंकि चन्द्रकान्ता के अनुसार यह कहानी स्थापित सामाजिक मूल्यों को तोड़ती है। इस कहानी के नायक बाबूजी के चरित्र में दोगलापन है तथा कहानी का अंत अबूफ पहेली है।

जबाब में कथाकार मिथिलेश्वर ने बताया कि इस कहानी का प्रथम प्रकाशन 1 सितम्बर 1974 के 'धर्मयुग' में हुआ था। तब से आज तक यह कहानी चर्चा और विवाद का विषय बनी हुई है। प्रख्यात नाट्य निर्देशक ब.व. कारंत ने जब श्रीराम सेंटर रंगमण्डल के लिए इसकी नाट्य प्रस्तुति की तो न सिर्फ उसे व्यापक सफलता मिली, बल्कि पूरे देश में इसकी दो सौ से अधिक नाट्य प्रस्तुतियां हुई तथा प्राय: सभी नाट्य प्रतियोगिताओं में सर्वोत्तम होने का खिताब भी इसने हासिल किया। बाद में एन. एस. डी. आदि कई संस्थाओं ने इसे मंचित किया।

कथाकार मिथिलेश्वर ने इस पृष्ठभूमि का भी खुलासा किया कि धर्मवीर भारती ने धर्मयुग के जिस अंक में इस कहानी का प्रकाशन किया उस अंक में विख्यात कथाकार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जैनेन्द्र कुमार के वक्तव्य 'पत्नी घर में बेगानी मन में' पर एक व्यापक परिचर्चा का आयोजन था। संभवत अंतर्वस्तु के साम्य की वजह से ही भारती जी ने जैनेन्द्रजी के उस वक्तव्य के साथ 'बाबूजी' कहानी का प्रकाशन किया।

कथाकार मिथिलेश्वर ने चन्द्रकान्ता के प्रश्न का जबाब देते हुए कहा कि जहाँ तक 'बाबूजी' जैसी कहानी लिखने का प्रश्न है, उसकी प्रेरणा मेरे कथाकार मन की उपज है। मैं देखता आ रहा था कि हमारा समाज मार्यादाओं और नैतिकताओं में बंधा है। सामाजिक मार्यादा और नैतिकता के विरुद्ध हमारा आचरण निषिद्ध माना जाता है। लेकिन इसके बाबजूद मैं पा रहा था कि अधिकांश लोग मन के धरातल पर इन मार्यादाओं और नैतिकताओं से अलग स्वतंत्रता और उन्मुक्तता को जीते होते हैं। संभवत: उनके मन की यह स्वतंत्रता और उन्मुक्तता ही गलत और गोपनीय सम्बन्धों को जन्म देती है, जिसका खुलासा आए दिन होता रहा है। ऐसे में मेरे मन में यह विचार आया कि व्यक्ति मन की स्वतंत्रता और उन्मुक्तता को कहानी के माध्यम से प्रस्तुत करने की जरूरत है ताकि बाह्य यथार्थ समक्ष व्यक्ति का आन्तरिक यथार्थ भी उजागर हो सके और 'बाबूजी' कहानी लिखकर मैंने यही किया। कहानी में उनकी रचना मैंने नायक रूप में शुरु की, लेकिन खलनायक बनते गए। फिर भी पाठकीय सहानुभूति उन्होंने ही हासिल की। हालांकि इसके बाबजूद यह कहानी हर जगह और हर पाठ में बहसों और विमर्शों को जन्म देती रही है, इसलिए इस कहानी के लेखक के रूप में इसके पक्ष या विपक्ष में निर्यायक रूप से में कुछ नहीं कह सकता।

अपनी बात को स्पष्ट करते हुए मिथिलेश्वर ने कहा कि लेखक जब कोई कहानी लिख चुका होता है तो वह उसके दायरे से बाहर पाठकों की चीज बन जाती है। इस स्थिति में उस पर कुछ भी कहने का अधिकार सिर्फ पाठकों को ही होता है।

उक्त आयोजन में उपस्थित कथा लेखिका तथा सक्रिय सामाजिक कार्यकर्त्ता मुध भादुड़ी ने बाबूजी को एक बेबाक चरित्र की विलक्षण कहानी बताते हुए कहानी के अत को बिल्कुल सार्थक और असरदार माना। मधु भादुड़ी के अनुसार कहानी अतं में मर चुके बाबूजी के सिरहाने शराब की बची हुई आधी बोतल को लेकर उनके छोटे लड़के की प्रतिक्रिया किया तो इसे पी जाऊं या बाबूजी के हत्यारे बड़े भैया के माथे पर पटक दूं... के माध्यम से कहानी का उचित अंत हुआ है। इसकी व्याख्या करते हुए मधु भादुड़ी ने कहा कि एक ओर ठहरा हुआ सुरक्षित जीवन है, दूसरी ओर बन्धनमुक्ति का सुखद एहसास। कहानी का अंत इस एहसास को पूरी तल्खी एवं कलात्मकता के साथ व्यक्त करता है।

विश्व साहित्य की गम्भीर पाठिका बीणा जैन के अध्ययन चर्चा 'अभिव्यक्ति' की सदस्याओं के बीच खास रही है। मिथिलेश्वर की कहानियों पर अपनी बात रखने पूर्व बीणा जैने ने बताया कि अब तक प्रकाशित मिथिलेश्वर का सम्पूर्ण साहित्य वे पढ़ चुकी हैं। मिथिलेश्वर: संकलित कहानिया की एक कहानी एक थे प्रो.बी. लाल कथाकार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Kashmir Women College of Education Bantalab Jammu

मिथिलेश्वर के कथा लेखन की मुख्य विशेषता का उल्लेख किया। लेख थे प्रो. बी. लाल कथाकार मिथिलेश्वर के पिता की असाधारण विद्वता पर आधारित सत्य कथा है। बी. लाल प्रोफेसर होते हुए भी किसान थे। अपनी जड़ो से जुड़े होने चलते ही उनकी सोच मौलिक थी तथा तत्काल मुद्दों तक वे पहुंच जाते थे। बीण जैने कहा, सभंवत: अपने पिता से मिथिलेश्वर को भी यह गुण विरासत में मिला है। शायद यही वजह है कि अपनी कहानियों में सम्बन्धित विषय की जड़ों तक वे पहुंच जाते हैं तथा मुद्दों को पकड़ लेते हैं। उनकी कहानियों की बेहतरी का यही मुख्य कारण रहा है।

'बाबूजी' कहानी पर अपनी राय व्यक्त करते हुए बीण जैन ने कहा कि बाबूजी के चरित्र को दोगला नहीं कहा जा सकता। दोगला वह होता है, जिसका अन्तर कुछ बाहर कुछ होता है। बाबूजी तो अन्दर से जैसे हैं, बाहर से भी एकदम वैसे ही।

'मेघना का निर्णय' कहानी में मेघना के निर्णय से अपनी सहमति व्यक्त करते हुए बीणा जैने कहानी की पृष्ठभूमि पर मिथिलेश्वर की राय जाननी चाही। जवाब में मिथिलेश्वर ने बताय कि बिहार के गाँवों में जब सामंती शोषण था, मजदूर वर्ग जब संगठित नहीं था, उस समय की यह कहानी है। मेघना जैसे मजदूरों ने जब महसूस किया कि संगठित होकर ही वे सामंती शोषण का मुकाबला कर सकते हैं, तभी बिहार के गाँवों में बदलाव की लहर कायम हुई। यह कहानी उसी लहर के आगमन की सूचक है।

'अभिव्यक्ति' की उपाध्यक्ष आशा ने 'मिथिलेश्वर: संकलित कहानियाँ' की कई कहानियों का उल्लेख करते हुए 'एक और मृत्युंजय,' 'जमुनी' और अपनी-अपनी जगह की विशेष चर्चा की। उन्होंने एक और मृत्युन्जय को जीवन और जगत की समझ प्रदान करने वाली सार्थक कहानी माना, जो अपने समय में नही मरता वह कहीं का नहीं रहता। उनके अनुसार मृत्यु की नैसर्गिक व्यवस्था से यह कहानी हमारा साक्षात्कार कराती है। मृत्यु के खौफ से हताश मन को सुकून प्रदान करने वाली यह कहानी है। भौतिक उपलब्धियों और वैज्ञानिक विकास के परिवर्तनों में समाप्त होती मानवता तथा मनुष्य की अपनी वास्तविक अहमियत को यह कहानी रेखांकित करती है। इस तरह की कहानियाँ हिन्दी में कम लिखी गयी हैं।

इस संकलन की 'जमुनी' कहानी को आशा ने संकलन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कहानी बताया। 'जमुनी' एक भैंस है जिस पर गाँव की एक गरीब परिवार पूरी तरह अवलम्बित है। जमुनी का दूध, दही घी, मट्ठा, उपले आदि बेच कर जिऊत अपने परिवार के जीविकोपार्जन की समस्या हल करता है। इसलिए जमुनी के बीमार पड़ते ही उसका पूरा परिवार जमुनी की सुश्रुषा में लगा जाता है। आशा ने जमुनी का एक महत्वपूर्ण अंश पढ़ भी रेखांकित कर रखा था। लेकिन समायाभाव के चलते वे प्रस्तुत नहीं कर सकीं। आशा द्वारा पढ़ा अंश है-जिउत की पत्नी जोगनी की यादों का तो जैसे समंदर ही उमड़ आया है। उसके

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बसे घर की नींव है जमुनी, उसकी सुखी वृद्धावस्था को सींचने वाली नदी, उसके छूंछे हाथ कगंन, उसकी खाली देहरी का अनाज, उसके अंधेरे घर का दीया। पति जिउत के कन्धे की लाठी, बेटे सरभू के माथे का गमछज्ञ, बेटी रतिया के गले की ओढ़नी उसे बनिहारिन से रउताइन बना दिया है जमुनी ने, एक खाते-पीते घर की महिलकाइन। इसलिए जोगनी, बीमार जमुनी को एक मां की तरह अगोरकर बैठी है, जैसे जमुनी भैंस नहीं, अकेली संतान हो जिसके जीवन-मरण का प्रश्न उसके वंश के बसने-उजड़ने का प्रश्न हो।

आशा ने अपनी-अपनी जगह कहानी को दो वर्गों के जीवन मूल्यों की कहानी बताया। किसान पिता की नजर में जमीन की उपयोगिता फसल और साग-सब्जी उपजाने में है, लेकिन उसी का साहब बना पुत्र अपने क्वार्टर की विस्तृत जमीन की उपयोगिता फूल उगाने में समझता है। पिता द्वारा उगाई सब्जियों के पौधों से उसे उबकाई आती है। इस तरह दो वर्गों की वर्गीय चेतना के संघर्ष को पिता-पुत्र के संघर्ष के रूप में कथाकार ने अभिव्यक्त किया है।

त्रिशला ने 'चल खुसरों घर आपने' को बदलते समय और समाज के बीच अपने परिवारों में उपेक्षित बुजुर्गों की मर्मस्पर्शी कथा कहा। उनके अनुसार कहानी की नायिका विधवा माँ को जब अपने नौकरी शुदा शहरी बेटों के यहा पनाह नहीं मिला तो अपने गाँव लौट चलती हैं। अपने परिजनों से अलग वृद्धावस्था में गाँव लौटते हुए उनका मन आश्वस्त है कि अब वे सही जगह जा रही हैं। लेकिन गाँव पहुंच कर उनका गुजर जाना मन को कचोट जाता है। त्रिशला ने कथाकार मिथिलेश्वर से यह जानना चाहा कि कहानी का अंत ऐसा क्यों किया? जवाब में मिथिलेश्वर ने बताया कि हमारे पारिवारिक सम्बन्धों के बीच कायम होती अवसरवादिता और संकीर्णता में हमारे असहाय बुजुर्ग इसी परिणति को प्राप्त होते हैं। इस स्थिति में माँ को सुखद अंत दिखाकर मैं पाठकों को यथार्थ से वंचित नहीं रखना चाहता।

त्रिशला ने 'पत्थर की लकीर' को भी एक प्रेरक और यादगार कहानी कहा। कहानी के ग्रामीण नायक बाबा हरदयाल जिस तरह शोषण और अन्याय के खिलाफ लड़ते हैं, उससे वे जीवन मूल्यों को अपनी अलग व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। त्रिशला ने कहानी से बाबा हरदयाल की उस व्याख्या का अंश उद्धत भी किया-'किसी के अनुसार जिन्दगी एक अनबूझ पहेली है। किसी ने इसे झरना और नदी के रूप में देखा है। किसी के अनुसार यह चढ़ती हुई धूप है तो किसी के अनुसार ढलती हुई शाम। किसी ने इसकी तुलना नाटक के पात्रों की भूमिका से की, तो किसी ने इसे मेला समझने की कोशिश की और पानी के बुलबुले की मानिंद इसके अस्तित्व को क्षणभंगुर बताया। लेकिन बाबा हरदयाल की व्याख्या इन लोगों से पृथक थी। वे अक्सर हमलोगों से कहा करते, जिन्दगी कुछ और नहीं,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपने-अपने बूते और तजुर्बे से निर्माण की गई याददाशत होती है।' 'जी का जंजाल' कहानी में एक विधवा माँ के फिक्स डिपॉजिट के रूपयों पर बेटों की कुदृष्टि, 'अभी भी' कहानी में कोढवंश से मुक्ति के लिए कोढ़ी को जीते ती गंगा जी में फेंकने तथा 'सत की सोर पाताल तक' कहानी में अपहर्त्ताओं के बीच मूल्यों के प्रति समर्पित एक प्रोफेसर के फँसने की कथाओं पर भी उक्त आयोजन में पाठिकाओं ने अपनी राय जाहिर की।

रेखा ने इस संकलन की मुख्य विशेषता कहानियों का वैविध्य से सम्पन्न होना बताया। उनके अनुसार भिन्न-भिन्न पृष्ठभूमि, भिन्न चरित्र तथा भिन्न समस्याओं पर आधारित कहानियों ने संकलन को एकरसता से बचाते हुए पाटकीय रुचि की सरंचना कायम रखी।

'अभिव्यक्ति की' अध्यक्ष रीता जैन ने संकलन की अधिकांश कहानियों का उल्लेख करते हुए 'तीन यार' तथा 'तिरिया जनम' की विशेष चर्चा की उन्होंने बताया कि तीन यार कहानी में तीन युवक अपनी बेरोजागारी और आवरगी के तहत आपस में घनिष्ट मित्र बने रहते हैं। लेकिन एक धोखेबात द्वारा विभिन्न पद पाते और सुविधाओं से जुड़ते ही एक दूसरे के विरोधी बन जाते हैं। लेकिन पुन: जब उनके पद और उनकी सुविधाएं समाप्त होती हैं तो पहले ही भाँति गली के नुक्कड़ पर अपनी मित्रता के साथ आवारगी करते नजर आते हैं। यानी अभाव और गर्दिश में ही आदमी एक-दूसरे से जुड़ा रहता है, परगत भिन्नता और सुविधा संपन्नता के बाद नहीं।

'तिरिया जनम' कहानी को रीता ने स्त्री जीवन की पीड़क दास्तान कहा। स्त्री को जातिगत आधार पर अपने से हेय समझते हुए पुरुष द्वारा निरंतर दमन, शोषण और उत्पीड़न का यह कहानी व्यक्त करती है। यहाँ रीता ने बताया कि कथाकार मिथिलेश्वर की यह खास विशेषता रही है कि अन्याय, अत्याचार और विषमता के बीच जाते हुए भी उनके पात्र पलायन का रास्ता अख्तियार नहीं करते, बल्कि अपनी समस्याओं और सीमाओं के बीच संघर्षरत होते हैं। तिरियाजनम की सुनयना भी अपने पति से त्रस्त है। फिर भी प्रगतिशील विचारों वाले अपने मामा के सहारे प्रतिरोध की चेतना से जुड़ी रहती है। नरेश बहू के वीरु, पत्थर की लकीर के बाबा हरदयाल, मनबोध मउआर के मनबोध ऐसे ही पात्र हैं, जो प्रतिरोध की चेतना के सबल संवाहक हैं।

उक्त आयोजन का समापन वक्तव्य और धन्यवाद ज्ञापन मधु जाजोदिया ने दिया। बड़ी संख्या में पाठिकाओं की उपस्थिति और सक्रिय भागीदारी ने पूरे समय तक आयोजन को महत्वपूर्ण बनाए रखा।

द्वारा/श्रीमती मधु भादुड़ी ए-12,
आई एफ.एस. अपार्टमेंट मयूर विहार- 1, दिल्ली- 110091

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025 Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

Wither Indian Left?

■ **Suresh Deman**

Joseph Stalin, also know as Uncle Joe in certain circles emerged as a great WWII hero when his army steam rolled into Berlin in the face of a fierce Natzi resistance. However, Mamta rolled into the Red Bastion of West Bengal without any resistance despite Buddhdeb Bhattacharya's claim of victory on the eve of couting of votes. In fact, this was one of the worst defeats plunging the CPI (M) below the Congress with a record low of 40 seats since 1967 when it forged the left coalition under its leadership. In sharp contrast, in spite of a narrow defeat in assembly election and internal sabotage, veteran leader Achuttananadan emerged as 'Man of the Match' in the game of bourgeois democracy. The wafer-thin UDF victory in Kerala was lagrgely attributed to prolonged feud between two factions in the CPI-M led by Chief Minister V S Achuthanandan and party state secretary Pinarayi Vijayan. The infighting among front partners before the poll has undoubtedly contributed to the LDF reverses. Although Achhutanandan was branded as old fashioned hard line Marxist, he proved his opponents wrong both in and outside the CPI (M). Left front got 68 and was short of only 4 seats to from the government. In fact, UDF will be forming the Govt. with a margin of 1456 voted, The election debacle in W.B. was obvious to everyone with the exception of the CPI (M) leadership. In fact, both the Right (BJP) and the left CPI (M) were facing the isolation in electoral politics. Obviously, given rightwing ideological position of the BJP it couldn't warm up to the Congress, but CPI (M) still had something to hang on to for renewing its filtration given the so-called secular and progressive face of the Congress which it did resort to albeit with no corresponding result. Surprisingly, the issue of Civil Nuclear deal did not figure at all in the election campaign. The CPI (M) prospects of success in the assembly election were badly marred, it is, due to government's poor performance and takeover of the CPI (M) politics in WB by the lumpens and goons.

Flirtation with congress as well as karat's attempts to capitalize on the interview with well know marxist historian Eric Hobsbawm backfired (What is the difference between the CPI and the CPI (M) Answer : None) . Instead of concentrating on good governance and enhance connectivity with the people by reigning in the party cadre's excesses the CPM tried to take recourse to strange msthods. "How come he is defeated even after throwing out of WB in order to get Muslim votes was most apt observation made by Bangladesh exile writer, Taslieema Nasreem."

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

In West Bengal, the CPI-M-led Left Front managed just 61 seats of which the CPI-M got 40, in the 294-member assembly. Mudslinging has already begun, not only against the capital-based leaders, but also against the Bengal-based ones. Razzak Mollah, a senior party leader and former minister who has been reelected, stated that Nirupam Sen, a politburo member and West Bengal's outgoing industry minister, was the main culprit for the Bengal defeat as he had ignored earlier warnings by colleagues. In fact, Sen continued to defy party's own criticism of handling situation in Nandigram and Singuir and instead pledged to acquire land for capitalists for so-called industrialization. Although after the parliament and civic poll this was the third defeat in West Bengal the CPI (M) central leaders tired to interpret the defeat in an illusive manner.

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

Visiting Professor
Honorary Director & Consultant
Centre for Economics & Finance
Londan SE9 2ZP

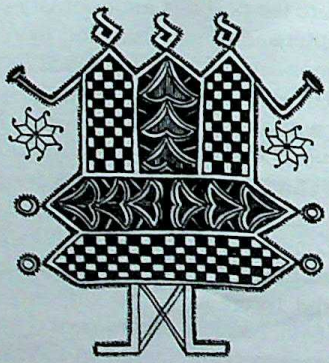

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

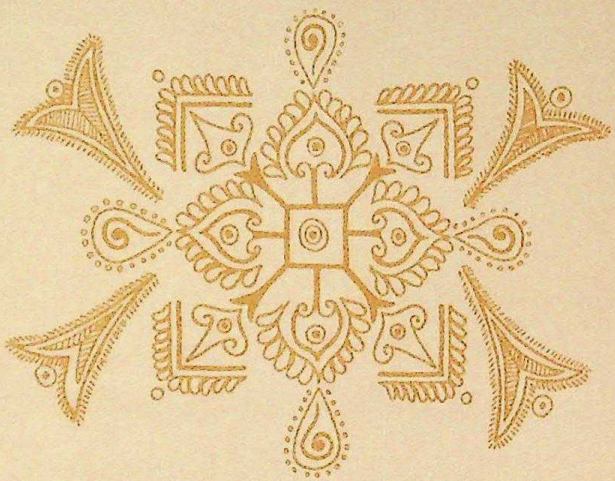

वे मेरे शब्दों की ताक में बैठे हैं
जहां सुना नहीं, उनका गलत अर्थ लिया और मुझे मारा

इसलिए कहूंगा मैं
मगर मुझे पाने दो
पहले ऐसी बोली
जिसके दो अर्थ न हों।

–रघुवीर सहाय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

पंजीयन संख्या : 36/ए.एल./92-टी.सी.

बोधि प्रकाशन, जयपुर की विनम्र पहल

बोधि पुस्तक पर्व

साहित्य जन-जन के लिए

₹ 100 में 10 किताबें

मन्नू भंडारी

चित्रा मुद्गल

कमल कुमार

पद्मजा शर्मा

प्रमिला के पी

दूसरे सैट की रचनाकार

बोधि प्रकाशन का सदैव यह प्रयास रहा है कि पाठकों को श्रेष्ठ साहित्यिक पुस्तकें उचित मूल्य पर उपलब्ध कराई जाएं। मौजूदा हालात में जबकि पुस्तकों की जरूरत पहले से कहीं ज्यादा है, पाठक संख्या सिमटती जा रही है। हमारा मानना है कि अन्य अनेकानेक कारणों के साथ पुस्तकों का स्तरीय न होना और उनका मूल्य अत्यधिक होना भी पाठकों को साहित्य से दूर कर रहा है। अन्य कारणों को तत्काल बदल पाना भले ही हमारे वश में न हो लेकिन स्तर और मूल्य संबंधी पाठकों की शिकायत दूर करने का प्रयास तो हम कर ही सकते हैं। एक ऐसे ही प्रयास की शुरुआत है बोधि पुस्तक-पर्व। इस योजना के तहत देश-प्रदेश के चुनिंदा साहित्यकारों की पुस्तकें पेपरबैक कलेवर में पाठकों को उपलब्ध कराई जा रही हैं। दस-दस पुस्तकों के 10 सैट यानी कुल सौ पुस्तकें इस योजना के अन्तर्गत प्रकाशित की जानी हैं। प्रत्येक पुस्तक अनुमानत: 80 से 96 पृष्ठ की है और उसका मूल्य है मात्र दस रुपये। इस तरह एक सैट की कुल कीमत 100 रुपये । पहला सैट मई 2010 में प्रकाशित हुआ और दूसरा सैट जून 2011 में। हमें विश्वास है कि आप इस पर्व में हमारे सहभागी होंगे।

दूसरा सैट बिक्री के लिए उपलब्ध

साधारण डाक से मंगाने पर 125/-, रजिस्टर्ड बुक पोस्ट 150/-

बोधि प्रकाशन, एफ-77, करतारपुरा इंडस्ट्रियल एरिया
बाईस गोदाम, जयपुर-302006, मो. : 98290-18087
bodhipustakparv@gmail.com

सुधा अरोड़ा

ममता कालिया

मनीषा कुलश्रेष्ठ

रंजना श्रीवास्तव

प्रीता भार्गव

प्रकाशक-मुद्रक प्रेमकृष्ण शर्मा के लिए, भालोटिया प्रिंटर्स, जयपुर की ओर से
तरु ऑफसेट, एफ-77, करतारपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, बाईस गोदाम, जयपुर-302006 द्वारा मुद्रित

प्रधान सम्पादक : प्रेमकृष्ण शर्मा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by KS-MoE-2025-Grant